है, विवेक नहीं। दिशाहीन, अराजक विद्रोह, जो इसी मारे आत्महंता बन जाता है।

हम लोग—हमीं आलसी और कामचोर, ढोंगी और बड़बोले लोगों को संबोधित एक प्रहसन है, करुण प्रहसन, जो सब रेलगाड़ी के एक अंधेरे डिब्बे में बैठे हैं और आपस में झांव झांव कर रहे हैं, जो सब बस अंधेरे की शिकायत करना जानते हैं पर रोशनी के लिए हाथ-पांव हिलाने को तैयार नहीं!

अनुक्रम

चिन्दियों की एक झालर
६

शताब्दी
६५

हम लोग
१३३

पात्र-परिचय

मंडन : बाप, उम्र साठ के आसपास।
दीपा : माँ, उम्र पैंतालिस के आसपास।
मंगल : बेटा, उम्र पचीस के आसपास।

स्थान : हिन्दुस्तान का कोई बड़ा शहर।
समय : यही, किसी दिन की एक शाम।

प्रथम प्रस्तुति / प्रयोग, सागर, ११ फ़रवरी १६६९
निर्देशक : विजय चौहान

(पहली मंज़िल पर नंदन-दीपा का कमरा। पूरब की ओर एक दरवाज़ा जो ज़ीने पर खुलता है। पश्चिम की ओर, ज़रा पीछे हटकर, दूसरा दरवाज़ा जो दीपा के कमरे में खुलता है। उत्तर की ओर एक खिड़की जो बाहर सड़क पर खुलती है। खिड़की के नीचे एक तख़्त जिस पर मटमैली-सी एक दरी बिछी है और बहुत पुराना-सा एक लकड़ी का बक्स रखा है। सामने की ओर दो बेंत की कुर्सियाँ जिनमें से एक पर नंदन बैठा है और दूसरी पर दीपा। शुरू जाड़े का मौसम है। शाम के क़रीब चार बजे हैं। नंदन के हाथ में अख़बार है। दीपा कोई किताब पढ़ रही है।)

नंदन : मंगल कहाँ है ?

दीपा : फिरता होगा कहीं।

नंदन : जाने कब से नहीं देखा ...

दीपा : घर में बैठकर करे भी क्या ...

नंदन : फिर भी ...

दीपा : फिर भी क्या ?

नंदन : कभी तो घर में भी पैर टिकना चाहिए ...

दीपा : ———————

नंदन : खाना-वाना भी बाहर ही खाता है क्या ?

दीपा : जब जैसा सुभीता हुआ ...

नंदन : कुनिया जैसा तो घर है ... उसमें भी हफ़्तों किसी की शक्ल न दिखायी दे ... कैसी अजीब बात है ...

आज :

ेपा : अजीब क्या नहीं है ? ...

न : (अखबार पढ़ते हुए) दो लं...

दीपा : बड़ी मालगाड़ी से पंजाब

नदन : हिन्दुस्तान की आबादी भी

दीपा : एक सौ बत्तीस लोगों का सत्र

नदन : बस !

कैसी बात करती हो ! ... म

दीपा : दो !

नदन : वही तो मैं कहूँ ... पूरे पचास क

दीपा : मगर यह तो कोई अच्छा का नहीं
अच्छा-बुरा कौन देखने जाता है ..
को रेल है ।

नदन : अजब धामड़ लोगों से पाला पड़ा है ..
पानी में ज़रा-सा ज़हर मिलाकर ... ;
बर्बादी । इस तरह कहीं आबादी घटती

नदन : । थोड़ी देर, कोई आध मिनट, कोई कुछ
बार, ये खबर तो और बढ़-चढ़कर है ...

दीपा : को काटा और मर गया ।

नदन : तुम्हारा अखबार भी एक ही है ।
इंडियन टाइम्स कोई ऐसा-वैसा अखबार
नाम-नवा सब डुबा दिया है ... पोलीमीन को
कहूँ तुमसे मनोविज्ञान कोई मोनवी मादव है,
हुसैन ..

दीपा : मैं खबर भी देने ही किसी मनोविज्ञ ...

नदन : इस में तो एक किसी ...

ेपा : ...

नंदन : नहीं मैंने पहले भी सुना था ... अफीम में ऐसी तासीर होती है ...

दीपा : तुम भी जो शुरू कर दो थोड़ी-सी ...

नंदन : ख़याल बुरा नहीं है !

दीपा : बहुत अच्छा है ... ऊँघते बैठे रहोगे । किसी के आने-जाने की फ़िक्र भी नहीं सतायेगी और साँप काटेगा तो ख़ुद मर जायेगा।

नंदन : और जो न काटे ?

दीपा : मज़े में ऊँघते बैठे रहना तीन-चार सौ बरस ... अफ़ीम-चियों की उम्र बहुत लम्बी होती है ।

नंदन : क्या होगा इतना जी कर ?

दीपा : ये क्या ! उकता गये ? अभी से ?

नंदन : अभी से ? कल का पैदा तो हूँ नहीं !

दीपा : हाँ, मगर उस दिन का इंतज़ार नहीं करोगे ?

नंदन : कौन-सा दिन ?

दीपा : अरे वही जब घी-दूध की नदियाँ बहनेवाली थीं ... शेर-बकरी एक घाट पानी पीनेवाले थे ... हवा में शराब की गगरियाँ लुढ़कनेवाली थीं ... ताजवालों के सर क़लम होनेवाले थे ... सब तरफ़ फूलों की बरसात होनेवाली थी ...

नंदन : अच्छा ! ! ! ! वो दिन ! तुम्हें पता नहीं ? वह तो आकर चला भी गया !

दीपा : सच ?

नंदन : हाँ जी, कुछ ऐसी ही बात है ... किसी को कानोकान ख़बर भी नहीं हुई, गुपचुप हो गया सब कुछ ... लेकिन घबराओ मत, सुना है कि वह दिन फिर-फिर पलटकर आता है।

दीपा : ये सब उलजलूल बातें कौन सुना जाता है तुम्हें ?

नंदन : एक दिन मैंने अघोर बाबू से पूछा था ... घुटना बदल पर हाथ रखने लगा।
(नंदन कुर्सी से उठता है, घुटने पर हाथ रखकर)

नंदन : मशीन का तेल तो न होगा तुम्हारे पास ?

दीपा : मशीन का तेल ?

नंदन : हड्डियाँ खड़खड़ाने की सी आवाज हुई ... जरा तेल दे देता तो जोड़ खुल जाते ...

दीपा : अब तो ये जोड़ सब एक साथ ही खुलेंगे !

नंदन : हँसी की बात हो तब भी तुम्हें हँसी नहीं आती ...
(ज़ोर से हँसता है, झूठमूठ की हँसी, जैसे कोई हलक में उँगली डालकर कै करे।)

दीपा : (वैसी ही उदास) हमारी असल बीमारी क्या है, जानते हो ?

नंदन : वही जो अभी कहा मैंने ... हम हँसना भूल गये हैं ...

दीपा : नहीं नंदन, हँसना नहीं हम मरना भूल गये हैं ...

नंदन : एक ही बात है ...

दीपा : जैसे मेरी परनानी भूल गयी थी। पचानवे की होकर मरी ... मैंने कपड़ों की नन्हीं-सी एक गठरी जैसी खाट पर पड़ी रहती ... आँख की रोशनी जाने कबकी चली गयी थी ... किसी की आहट भर मिल जाय, पकड़कर बिठा लेतीं ... लोग सब भागे-भागे फिरते उनसे ... जिंदगी और मौत के बीच अटके हुए सत्रह बरस ...

नंदन : इसी को तक़दीर कहते हैं दीपा !

दीपा : नाम से मेरी कोई लड़ाई नहीं ... चीज़ वही है ... लोग मरना चाहते नहीं ... एक फूहड़-सी हविस जीने की ...

एड़ियाँ रगड़ना ... जहाँ अब कोई रस नहीं ... न कुछ देने को, न कुछ पाने को ... चले गये सब ... अपने जो सगे थे ...

नंदन : आज मैं घूमते-घूमते कालीबाड़ी की तरफ निकल गया था...

दीपा : मैं भी एक रोज़ गयी थी ...

नंदन : (दीपा के पास पहुँचते हुए) यही मैं तुमसे पूछना चाहता था ... वो क्या चीज़ है जो अब भी हमें वहाँ खींचकर ले जाती है ...

दीपा : (अलग हटते हुए) हम साथ-साथ नहीं गये ... अलग-अलग गये ..

नंदन . यह तो कोई जवाब नहीं ...

दीपा : कालीबाड़ी अब वो कालीबाड़ी नहीं है। तुम अब वो नंदन नहीं हो। मैं अब वो दीपा नहीं हूँ। सबको दीमक ने चाट लिया है।

नंदन : वही जगह है ... सब कुछ वही है ...

दीपा : झूठ !... जाने काहे की आढ़त है अब उसमें ...

नंदन : जहाँ कभी हमारा हेडक्वार्टर था .. मोटा-सा एक कोई सेठ बैठा था ... घी के पीपे जैसा ... ठेलेवालों से कुछ झाँय-झाँय हो रही थी . . और मुझे अतुल का वह मुस्कराता हुआ साँवला चेहरा याद आया ...

दीपा : मैं तो पिछवाड़े से होकर उस कमरे को भी देख आयी ...

नंदन : यह सब कुछ भी नहीं दीपा ? कुछ भी नहीं ?

दीपा : यादों की बैसाखी ... सीली हुई माचिस .. न रास्ता कटता है ...न आग जलती है ...

नंदन : जाने कितना खून पिया होगा इस धरती ने ...

दीपा : और एक दाग नहीं ... सब जगह धब्बे हुए हुए ...

नंदन : हर बार एक नयी शुरुआत ...

दीपा : जो महक जाती है ...

नंदन : एक हौसला ...

दीपा : जो मर जाता है ...

नंदन : एक फूल ...

दीपा : जिसे कोई मनचला हाथ तोड़कर फेंक देता है ...

नंदन : एक प्याला ...

दीपा : जो होठों तक आते-आते ...

नंदन : एक आग ...

दीपा : जो बुझ जाती है ...

नंदन : एक तड़प ...

दीपा : जो तिलमिलाकर रह जाती है ...

नंदन : वाह रे जमूरे ! मदारी का जी खुश हो गया ! ... और सो भी बिना रिहर्सल ...

दीपा : सत्ताइस बरस का संग-साथ कुछ कम रिहर्सल है ?

नंदन : ... बिलकुल जैसे अंधा कुआँ बोल रहा हो ?

दीपा : आवाज जो फेंकोगे पलटकर आयेगी ...

नंदन : चमगादड़ सब ...

दीपा : अच्छी-अच्छी कुर्सियों पर बैठे हुए ...

नंदन : साँप ...

दीपा : अपनी-अपनी नरम-गरम लाल-सुनहरी बाँबियों में ...

नंदन : बिच्छू...

दीपा : जो तुम्हें डंक मार रहा है ...

नंदन : डंक ? मुझे ?

दीपा : हाँ ...और मुझे ... अभी तो मैं अं थी ... और

तुम भी अकेले गये थे ... हम एक दूसरे की आँखें बचा रहे थे ...

नंदन : अभी शायद कल मैंने भूगोल पर किसी का एक लेख पढ़ा था ... रेगिस्तान तेजी से बढ़ता आ रहा है ...

दीपा : शुतुरमुर्ग दुनिया का सबसे समझदार जानवर है ...

नंदन : उसका दम कैसे नहीं घुटता ... रेत मे सर गाड़े-गाड़े ...

दीपा : दम कहाँ किसका घुटता है। सब कहने की बातें हैं। एक से सुनकर दूसरा तोते की तरह रटता है। ... आदमी के सहने की कहीं सीमा नहीं ... होती तो आग लग गयी होती ... मगर कहाँ ... मेंहदी को जितना ही घिसो उतना ही चटक रंग देती है ...

नंदन : मौत की कैसी बारीक धूल ... जो हर चीज पर तह की तह जमा होती जाती है ... (हाथ चलाता है जैसे धूल को काट रहा हो) हाथ मारो तो वहीं चिपक के रह गयी, जैसे मकड़ी का जाला ... कुछ भी करो, उसका झरना नहीं रोक सकते ... सुबह-शाम ...

दीपा : आँखो पर ... हाथो पर ... पैरों पर ... कीचड़ की शक्ल मे ....काई की शक्ल मे ... माड़ी की शक्ल मे ... कि एक रोज देखा कि अब दिखायी नहीं पडता ...

नंदन : दिल-दिमाग, हाथ-पैर, सब मे जैसे किसी ने सीसा पिला दिया हो ...

दीपा : सब उम्र का फ़साद है ...

नंदन : थकान एक सदी की ...

दीपा : पता नहीं मैं कैसे आ पड़ी यहाँ ... छोड़ो ...

नंदन : कैसे-कैसे सजीले जवान थे। शकर की तो याद होगी तुम्हें ?

दीपा : वही जो अपनी टूटी टाँग लेकर जंग से भागा था ?
नंदन : और गोस्वामी ?
दीपा : सनन्-सनन् गोलियाँ चलती रहीं ... शरीर छलनी हो गया मगर पिस्तौल के घोड़े पर हाथ चलता रहा ... जब तक अपने सब लोग निकल नहीं गये ... और फिर गोस्वामी का सर एक तरफ़ को लुढ़क गया ...
नंदन : तसवीरों का यह बक्सा भीतरवाली उस छोटी कोठरी में पड़ा था ... (उठकर तख्त पर बक्से के पास पहुँचते हुए) मैं बिलकुल भूल गया था ...
दीपा : मुझे दीमकों से बड़ा डर लगता है ...
नंदन : वही तो ...
दीपा : ज़रा सा नज़र चूकी और मिट्टी का ढेर रक्खा है ...
नंदन : अभी तो मैंने कहा लाओ आज इन्हें सुने में टाँग दूँ ...
दीपा : चूहे भी तो कुछ कम नहीं ...
नंदन : हवा में लटकी हुई चीज़ पर चूहों का क्या बस ?
दीपा : चूहे ? तुम्हारी हवा तक को कुतर डालें ...
नंदन : (बक्स खोलते हुए) काफ़ी कुछ सत्यानास कर दिया !
दीपा : (नंदन की ओर बढ़ते हुए) मैं कहती थी ...
नंदन : खाक कहती थीं ! यह तो कहो आज मुझे जाने कैसे ध्यान आ गया वर्ना ...
दीपा : (कड़वी-सी मुस्कराहट) यह दुनिया एक सिरे से मिट गयी थी ! ... चलो फिर भी काफ़ी ग़नीमत रही ...
नंदन : हँसी की तो वैसी कोई बात नहीं इसमें ...
दीपा : घराऊ गहनों की भूख सिर्फ़ औरतों को नहीं होती !
नंदन : देखो न क्या करके रख दिया तुम्हारे इन दीमकों ने ... (बक्स में से एक-एक करके तसवीरें निकालता है, जो

तसवीरें नहीं हैं — पुराने-मटीले कागज़ के तसवीरनुमा छोटे-बड़े चौकोर टुकड़े)

दीपा : सब घराऊँ गहनों का यही हाल होता है ... एक न एक चोर ... एक न एक चूहा ... लोहे की एक आलमारी ले लो ... सुनते हैं उसमें दीमक-चूहे कुछ नहीं लगते ...

नंदन : (तसवीरें उलटते-पलटते हुए) कैसे-कैसे शेर नर थे ...

दीपा : और उनको भी चूहा कुतर गया ...

नंदन : (एक तसवीर हाथ में लेकर देखता है और फिर दीपा की ओर बढ़ाते हुए) यह देखो यह तुम्हारी गीता है ..

दीपा : जो सदा औरों को सदाचार का उपदेश देती रहती थी ...

नंदन : मर्दों के वेश में ... साहस की प्रतिमा ... तेरह-चौदह साल के छोकरे जैसी दिखती थी ... चेहरा हरदम फूल की तरह खिला हुआ ... हर मुश्किल काम के लिए सदा सबसे आगे-आगे ...

दीपा : छिप्रा से बोली, तुम्हें यही सब करना था तो यहाँ क्यों आयी ?

नंदन : जिस ऐक्शन में वह मारी गयी ...

दीपा : छिप्रा एक ही मुँहफट, बोली — तुम क्यों सोतीं हो निखिल के संग !

नंदन : तुम्हें तो याद होगी।

दीपा : क्या नहीं याद मुझे ?

नंदन : हंटर नाम का वह पुलिस सार्जण्ट था ... खास अंग्रेज का बच्चा ... (हंटर और गीता का प्रवेश। उन पर स्पॉट पड़ता है। क्षण भर दोनों हाथ डाले खड़े रहते हैं, फिर नंदन के बोलते-बोलते दोनों प्रेमी-प्रेमिका का मूक अभिनय करते हुए धीरे-धीरे मंच पार करके बाहर चले जाते

है।) ... नया-नया आया था ... सीना तानकर चलता था ... जैसे आगे-पीछे दसठो सिपाही हों ... नाटा, गिट्ठा सा आदमी था ... असल जल्लाद ... मार-मार के उसने हमारा हलुआ कर दिया ... धर्रा उठे लोग ... कोई पास न आये, ऐसी हालत हो गयी ... लेकिन कौन मारे उसको और कैसे मारे ... कभी अकेले निकलता ही न था ... आखिर फिर गीता ने ही उसका जिम्मा लिया ... सब तो पता है तुम्हें ... गोरी-चिट्टी थी ही, फ़र्राटे से अंग्रेज़ी बोलती थी ... मिस पामर्स नाम रख लिया और जा मिली वैसी ही कुछ लड़कियों के संग ... महीनों उसको सेया-पोसा उसने ... आखिर फिर एक रोज उसका दिन आ ही गया ... हंटर उसे अपने साथ घर ले गया ... और उसी रात बिस्तर में गीता ने हंटर का खून किया और खिड़की से कूदकर भागी लेकिन कितनी दूर ... चीख सुनकर संतरी दौड़े और वहीं भूनकर रख दिया गीता को ...

दीपा : बिलकुल माताहारी का किस्सा है ...

नंदन : ऐसा जीवट ... ऐसी हिम्मत ...

दीपा : और ऐसा घमंड ...

नंदन : सबका अपना रंग था ... ये रहा तुम्हारा लँगड़ा शंकर ...

दीपा : बड़ा प्यारा आदमी था शंकर ...

नंदन : जरा सनकी-सा था न ?

दीपा : हर वक्त जैसे कोई सपना-सा देख रहा हो ... उड़े-उड़े से

मदन : और यह रामसुन्दर ? बाप रे बाप, कितना ताकतवर था ! अँगेड़ी आदमी, पता नहीं किस बात पर एक रोज़ मेरी-उसकी कुछ कहा-सुनी हो गयी ... उसने आव देखा न ताव, मुझे उठाकर कमरे के बाहर फेंक दिया ... जैसे कोई गेंद उठाकर फेंक दे .. तीन दिन मेरी पीठ दुखती रही ...

दीपा : यही रामसुन्दर था न जिसने दुर्गाकुंड-वाली उस मुठभेड़ मे ...

मदन : नगे हाथो एक पुलिसवाले की गर्दन तोड़ दी थी ... बहुत ही बीहड़ आदमी था ... मगर फिर क्या मार पड़ी है उसको ... क्या मार पड़ी है ... मैं तो आज भी सोचकर काँप जाता हूँ .. ज़मीन पर गिराकर कैसे-कैसे उसको बूटों से रौंदा है ... राइफ़ल के कुदों से पुरा है ... खून फेंक दिया उसने लेकिन न तो बेहोश हुआ और न एक बार उफ़ की ... वो भी क्या दिन थे दीपा ...

दीपा : ———

मदन : अभी कल की बात हो जैसे ...

दीपा : पचीस-तीस बरस होते भी क्या हैं !

मदन : हम जवान थे ... हमारी दुनिया जवान थी ...

दीपा : और हम आसमान पर अपना झंडा गाड़ने निकले थे ...

मदन : हवा मे रगीन फरहरे उड़ रहे थे ...

दीपा : गुब्बारे ...

मदन : तुम्हें कुछ याद नही दीपा, वो फरहरे थे ... हमारे बाँस बहुत लम्बे थे ताकि दूर-दूर तक लोग देख सकें ...

दीपा : तुम्हारी आँखें तब भी इतनी ही फूटी हुई थी ... पीछेवाले ज़्यादा अच्छी तरह देख पाते हैं ... सब गुब्बारे थे,

रंग-बिरंगे ... लम्बी-लम्बी डोर थी उनकी ... गुब्बारे हवा में उड़ रहे थे और सबने मजबूती से अपनी डोर पकड़ रखी थी ...

नंदन : सीने में कैसा एक जोश था ... एक आग थी ... एक भूचाल था ...

दीपा : सब इमारतें ढह गयीं जिसमें ...

नंदन : दुनिया में बेखबर हम कदम बढ़ाते चले जा रहे थे ...

दीपा : पीछे मुड़कर जो देखा तो मैदान खाली था ...

नंदन : हम चलते रहे चलते रहे ...

दीपा : और फिर एक दिन नंदन ने दीपा से पूछा, यह हम कहाँ आ पहुँचे दीपा ...

नंदन : जहाँ पचास करोड़ मुर्दा चमगादड़ लटक रहे हैं, बिजली के तारों पर, पेड़ों की शाखों में, मकानों की मुंडेरों में ...

दीपा : यहीं सब हासिल तुम्हारे, रात के अंधेरे में ...

नंदन : क्या बला का शोर था ...

दीपा : और फिर क्या गजब का सन्नाटा ...

नंदन : बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी ...

दीपा : बुरा जिस दिन भड़ जायेगा ..

नंदन : तुम कभी मुझे अपनी पूरी बात नहीं कहने देतीं ...

दीपा : पूरी बात कोई कभी कहता भी है, जीने को ...

नंदन : वो सब क्या झूठ था ? वो सपने हमारे ... वो सब जो हम बदल दिखते थे . . जनता की एक हस्ती जो हमारे साथ थी ... वो ख्वाहिशें जो हम कौम के साथ देख रहे थे ... एक खूबसूरत जिन्दगी की ...

दीपा : वहीं बुद्ध खाई रहे क्या मतलबी बैठे थे ...

नंदन : एक तूफान जो हमारे खून में दौड़ रही थी ...

 ५८६ नाटक

दीपा : लाल पानी जिसमें करोड़ों कीटाणु तैर रहे हैं ... मगर छोड़ो यह जमूरे का खेल, चाय लाऊँ ?

नंदन : तब तक मैं कीलें गाड़कर रखता हूँ। सब सामान लेता आया हूँ। यह रहा कपड़ा और डोरी ... (बक्स के पास से उठाकर दीपा के आगे रखता है) ऊपर-नीचे दोनों तरफ़ डोरी पहनाकर तुम सी देना। फिर हम तानकर कील से बाँध देंगे ... पिन भी लेता आया हूँ ... चाय का तुम्हें अच्छा ख़याल आया ... कुछ थकन सी लग रही थी ... (नेपथ्य में, यानी ऊपर, खूब ज़ोर-ज़ोर से अंग्रेज़ी गाना-बजाना चल रहा है। थोड़े-बहुत उतार-चढ़ाव के साथ ये आवाज़ें अन्त तक चलती हैं।)

... गी पब्लि
CCB
3/11/2/86

दीपा : थकन भी तो हुआ ...

नंदन : (चौंककर) कहाँ से ?

दीपा : चाय का ... तुम चौंक क्यों गये ?

नंदन : पता नहीं ... जाने कैसा-कैसा हो रहा है ...

दीपा : सब ढलती उम्र का खेल है ... मैं कहती थी ...

नंदन : (चिढ़कर) मैं कहती थी ... क्या कहती थी ? कोई कुछ नहीं कहता ... सब बस बातें करते हैं ... (दीपा अपने कमरे के दरवाज़े की तरफ़ बढ़ती है) तुम्हारे दिमाग़ में कभी कीड़ा नहीं चलता दीपा ?

दीपा : मैंने मार डाला सब को ... जाने कितने दिन्ने डी डी टी ख़र्च हो गया — (चाय बनाने को अन्दर चली जाती है। नन्दन कीलों का डिब्बा और हथौड़ा लेकर उठता है। अच्छा होगा कि कीलें सब पहले से गड़ी रहें लेकिन नन्दन दिखलाता ऐसा है कि जैसे वही गाड़ रहा है। कील कभी आसानी से नहीं गड़ती, यह बात न भूलनी

चाहिए। कई जगह ठोक-ठाक करने के बाद कहीं एक कील धँस पाती है। नन्दन को कुल आठ कीलें गाड़नी हैं। यह सारा ऐक्शन डेढ़-दो मिनट का है। नन्दन कील गाड़ते समय कुछ-कुछ बड़बड़ाता रहता है — यह साली दीवार है कि पत्थर! कहीं एक कील धरने को जगह नहीं! किला बनाया है, किला! कहीं कोई सेंध न लगा सके! बड़ा हीरा-मोती रक्खा है न! पचीस जगह मारो तब कहीं एक कील धँसती है! सारी दीवार चित-कबरी होकर रह गयी ... जैसे चेचक के दाग़ हों। ... कीलें गाड़कर नन्दन सुस्ताने को अपनी कुर्सी पर जा बैठता है। तभी दीपा चाय लेकर आती है।)

नंदन : बड़ी जल्दी ले आयीं ...

दीपा : यह भी तो गैस का चूल्हा है ... दो मिनट में पानी खौल जाता है।

नंदन : बड़े काम की चीज़ है गैस ... चाय बना लो ... रोटी पका लो ... और चाहो तो दो मिनट में दस साल आद-मियों को मारकर गिरा दो।

दीपा : बहुत ख़तरा रहता है.. कहीं आदमी फुककर मर जाय ...

नंदन : रात-दिन ये धमाचौकड़ी कैसी मची रहती है ऊपर? कौन लोग रहते हैं?

दीपा : पता नहीं ...

नंदन : अजीब लोग हैं ... पूरे वक्त कुछ न कुछ खटर-पटर ... राम जाने कितनी कुर्सियाँ, कितने पलंग हैं ... इधर से उधर ... उधर से इधर ... एक न एक खटपट चली ही रहती है ... कैसा दूभर कर दिया ... आदमी समझो

कौन लौंडे-लपाड़े हैं ...

दीपा : छोड़ो भी ... होंगे कोई ... अपना क्या लेते हैं ...

नदन : (चमककर) क्या खूब, अपना क्या लेते हैं ! पूछो, यह रहने की जगह है, कुछ घुड़दौड़ का मैदान तो है नहीं ...

दीपा : (जैसे बहलाते हुए) आओ, तुम्हारी ये तसवीरें लगा डालें ...

देन : (चाय की प्याली ज़मीन पर, तख्त के नीचे रखकर, बक्से के पास पहुँचते हुए) इस तरह ये तसवीरें हमेशा के लिए बच जायेंगी...

पा : अगर कुछ भी हमेशा के लिए बचता हो ! अपनी आँख मुँदने तक कहो, तब भी कोई बात है ...

न : अपने लिए वही हमेशा है... फिर कौन देखने आता है ...

पा : सब जी बहलाने का खेल है वर्ना सच पूछो तो ...

न : अपने पास और है भी क्या ...

ा : एक ताबूत ... जिसमें दो लोग बंद हैं ...

न : यही कुछ तसवीरें उस वक्त की ...

ा : धूल में लिपटी हुई ...

न : जब हम जवान थे ... हमारे सपने जवान थे ..

ा : कितने बचे ! ... सब तो अपनी राह लगे ...

न : न सही, पर वह समय तो झूठा नहीं हो गया ?

ा : झूठ क्या है, सच क्या है, कोई जानता है ?

ा : आत्मा जानती है ...

: किसकी आत्मा ? कैसी आत्मा ? उससे बड़ा बहुरूपिया है ? जैसा देश वैसा भेस ... हरजाई ... जो बस

दीपा : दस्तूर है ...
होना ऐसे नहीं .. जो ह
नदन : जीत गया वही मीर ...ह
(तिनककर) हरिहर ...
देखो हरिहर .
दीपा : ऐसी मिर्च क्यों लगती है ?
नदन : भाड़े का टट्टू ... जाने कितने
दीपा : ऐसी अच्छी गोल गोल आलू-ज
है ... सारे जमाने के लोग मेंढ
हर की खोपड़ी किराये पर चढ़ी
रहा है ... और दस लाख बैंक में
नदन : क्यों चिढ़ाती हो दीपा ... यह साल
दीपा : अकेले हरिहर क्यों ... अविनाश ...
... सुन्दर ...
नदन : वही तो मैं कहूँ, विष्णुसहस्रनाम से
रही है ।
दीपा : प्रीतमदास ... वह तुम्हारा भल्ला ...
और गिनाऊँ कहो तो !
(गंजी खोपड़ी, भड़कीले कपड़े, सुनहरी
लगाये चालाक हरिहर के नेतृत्व में आठ-
एक जुलूस, जिसमें विविध रंग-रूप के लोग
सौन्दर्य या फैशन-प्रतियोगिता के समान, मंच
से प्रवेश करके धीरे-धीरे

नंदन : उड़ा लो मजाक ... मगर सच कैसा हो जाता है कभी-कभी ... जबान की नोक पर नाम रक्खा है और . .

दीपा : मुँह खोलो ...

नंदन : क्यों ?

दीपा : उतनी सी जबान तुम्हारी कतरकर हाइपो में डाल दूँगी ...

नंदन : हाइपो ? हाइपो क्या ?

दीपा : यह बक्सा भर तसवीरें जमा करके रक्खी हैं और हाइपो नहीं जानते ? . वही घोल जिसमें फिल्म धोयी जाती है तो उसके भीतर खोयी हुई तसवीर उभरकर सामने आ जाती है ...

नंदन : छोड़ो साले को , अब तो किसी तरह याद नहीं आता ... सब गड़बड़ा गया ... जितनी कोशिश करता हूँ उतना ही वह नाम पीछे सरकता जाता है ... अभी जबान की नोक पर था, अब तो गले में फँस गया है जाकर . .

दीपा : न बाबा ... तुम्हें मेरे सर की कसम .. अब और कोशिश मत करना नहीं पेट में पहुँच जायगा ! बेतरह गड़ेगा ... खासकर ये मूँछ उसकी ! पूरा जोकर है ... (नंदन चिढ़कर तसवीर दीपा के हाथ से ले लेता है और उसे फाड़ने को होता है ।)

दीपा : हाय हाय ! यह क्या करते हो ? ... नाम तुम्हें याद नहीं, सजा इस बेचारे को ? (नंदन की जेब से कलम निकालते हुए) लाओ मैं इसका नाम तसवीर पर लिख दूँ ...

नंदन : क्या ? क्या ?

दीपा : गुमनाम सिपाही ... दि अननोन सॉल्जर ... यही हमारा गुमनाम सिपाही है ... (लिखती है)

नंदन : यह कैसा गुमनाम सिपाही है ? देखो नहीं गुमनाम सिपा-

नंदन : कोई कबूतर है ?

दीपा : कबूतर तो हई ... अब तो दीवार पर घोंसला बन रहा है !

नंदन : उफ ! मेरी तो खोपड़ी गंजी हो गयी इस ऊपर की धम-धम से ! पता नहीं कौन लोग हैं ? क्या उठा-पटक चलती रहती है ! एक मिनट को जो शान्ती से बैठते हों... और इसी तरह की एक पट्टी उधर उस दीवार पर।

दीपा : और जो इतने से काम न बना ? तसवीरों का तो अंबार लगा है बक्से में ...

नंदन : तो एक पट्टी इधर से उधर तक टाँग देंगे ... यहाँ तो कील भी नहीं गाड़नी पड़ेगी ... एक फ़ाजिल पट्टी मैं लेता भी आया था लेकिन पहले इन दो को तो ... (दोनों पट्टियाँ टाँगने लगते हैं । फिर एक-एक तसवीर का मुआइना करके उन्हें पट्टियों पर पिन करने का सिलसिला शुरू होता है । बातचीत के दौरान भी यह सिलसिला जारी रहता है, यथवत् । बातचीत के ऐक्शन के साथ इस ऐक्शन का मेल अभिनेता अपनी सुविधा और सूझ-बूझ से बिठायेंगे ।)

दीपा : (एक तसवीर उठाकर) ये कौन मियाँ मुशर्रफ़ हैं ?

नंदन : अरे, ये वही है अपना . . क्या सा नाम है ... भूल गयी तुम ? ...

दीपा : उँह, होगा कोई ...

नंदन : नाटा-सा दुबला-सा आदमी था ...

दीपा : दुबला तो मैं भी देख रही हूँ...सिगनी-स्टार मूँछें भी हैं,

सुथरे डकैत की तसवीर ... जिसे कम से कम पहचानना तो आसान है ...

नंदन : कौन रहेगा उस तसवीर के साथ ?

दीपा : तुम रहोगे .. और मैं रहूँगी ... रोज गालियाँ देंगे और रहेंगे ... जैसे अपने साथ रहते हैं ...

नंदन : तुम बहुत थक रही हो दीपा ...

दीपा : हाँ ... मगर तुमसे कम ... जिसे आँख उठाकर सामने की चीज देखना भी मुहाल हो रहा है . . वह दिन चले गये नंदन जब कोई उँगली पकड़कर अंधे को रास्ता पार करा देता था ...

नंदन : अंधे भी बहुत तरह के होते हैं दीपा ... चकाचौंध में भी आदमी अंधा हो जाता है 'सुनो-सुनो दीपा ... सुनती हो ? पूरे वक्त इन ऊपरवालों की टाँगें मेरे सर पर बजती हैं ... आफत हो गयी ... मैं तो हैरान हूँ कि इतना शोर आखिर होता कैसे है ... हम तो चाहें भी तो नहीं कर सकते ...

दीपा : हम तो मर चुके हैं ...

नंदन : वाह, क्या खूब जिन्दगी है यह भी कि दूसरे का जीना मुहाल हो जाय ... आज मैं इसका सेटल-मेन्ट करके रहूँगा ... यह कोई बात नहीं ...

दीपा : छोड़ो भी ... क्या पड़ी है तुम्हें . . अपना हँसते-गाते हैं ... तुम्हारा क्या लेते हैं ?

नंदन : शरीफों की बस्ती में रहने के भी कुछ कायदे हैं ...

दीपा : शरीफों की बस्ती !

नंदन : दस बजे के बाद आप रेडियो भी नहीं बजा सकते ... एक घर की आवाज दूसरे घर में न पहुँचनी चाहिए ...

हियो की मूरतें ? कैसे हैकल जवान होते हैं ... ?

दीपा : समय का चूहा सबकी मूँछ कुतर डालता है ... अं
सबका यही हाल होता है ... क्या गुमनाम और
नामवर ... अपना यह सिपाही जोकर है तो क्या, कि
से घटकर नहीं ... और मुनासिब है कि सबसे पहले
की तसवीर टँगे . . ऐसा ही कायदा है ... (तस
पिन कर देती है। फिर दूसरी तसवीर हाथ में लेक
अरे, यह तो वही मकान है, कालीबाडी - वाला ...

: हमारा हथियारखाना ...

: नये सेठ की आढत जहाँ घी के पीपे और गेहूँ की बोरि
ऊपर धरन तक अटी पडी हैं ! कहीं से लाओ तो ए
तसवीर उस सेठ की भी यहीं बगल में टाँग दूँ ... ह
चीज चमक उठेगी एक नयी रोशनी से ... जो कि अस
रोशनी है ...

: मुलम्मा ...

: मुलम्मा नहीं तेजाब ... जो हर मुलम्मे को काटकर चीज
को बेनकाब कर देता है ... वह तेज किरन जो जिस्म के
गिर्द लिपटे हुए तमाम कपडो को चीरकर हड्डी का ढाँचा
सामने कर देती है . . तुम भी देखो, दुनिया भी देखे
... कुछ बुराई नहीं उसमे ... कब तक ढाँक-तोपकर
रक्खोगे .

: समय का फेर ...

: सब भूल ... बेसूद कोशिश, सच्चाई से आँख चुराने की ...
देशप्रेम ... त्याग ... तपस्या ... कुर्बानी ... मैं तो जरूर
उस सेठ की तसवीर लाकर टाँगूँगी ... वह एक तसवीर
[illegible]

नंदन : (एक तसवीर दीपा की तरफ बढ़ाते हुए) लो यह रहा तुम्हारा अतुल ... कितना प्यारा आदमी था और कैसा दिलेर ... इतना सुन्दर, ऐसी मीठी बोली ... उस जैसा कोई नहीं था हमारे बीच ...

(अतुल का प्रवेश । स्पॉट अब अतुल पर । नंदन-दीपा प्रकाश-वृत्त से बाहर, पीछे की ओर सरक जाते हैं । फिर तीन व्यक्ति, जो फौजियों जैसे पतलून और बंद गले के कोट पहने है और जिनके चेहरे बिलकुल भावहीन और कठोर है, लकड़ी की एक छोटी सी मेज और तीन कुर्सियाँ लिये हुए आते हैं जिन्हें वहीं लगाकर तीनों अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ जाते हैं । यह पार्टी की अदालत है जो अतुल के मामले का फैसला करने के लिए बैठी है । स्पॉट अब उन चारों पर है । जिस बीच अतुल और पार्टी अदालत का प्रवेश आदि होता है, स्पॉट फिर ज़रा देर को इधर से हटकर नंदन पर पड़ता है जो ये अगली पंक्तियाँ बोलता है ।)

नंदन : याद है उस रोज जब वह अपने उस गोरे सार्जेण्ट को मारकर आया था ? ... कितना उदास था ... तीन दिन अपनी कोठरी से नहीं निकला ... निढाल अपनी खटिया पर पड़ा रहा, पानी छोड़ एक दाना जो उसके मुँह में गया हो ... उसी ने पहली बार यह सवाल उठाया था । (इसका टाईमिंग इस प्रकार होना चाहिए कि नंदन जब अपनी स्पीच के अंत मे '... सवाल उठाया था ...' पर पहुँचता है, तब तक पार्टी अदालत आसन ग्रहण कर चुकी है और स्पॉट नदन से हटकर अतुल पर पड़ता है, जो मानो नदन की ही बात को आगे बढ़ाते हुए

दीपा : यानी कि सबकी अलग अपनी क़ब्र है! किसी को किसी से मतलब नहीं ...

नंदन : मतलब का क्या मतलब है जो! ... अलग अपने घर में बैठकर हमें कान पड़ी आवाज़ भी न सुनायी दे! ... हाथ भर की दूरी पर हम खड़े हैं और इस तरह चीखकर बोलना पड़ रहा है ...

दीपा : तो क्यों चीख रहे हो? ... मुझे तो वह शोर कहीं सुनायी नहीं पड़ता ... तुम्हारे इस चीखने से अलबत्ता कान फटे जाते हैं! खामखा चिल्ला रहे हो ... अच्छी ज़बर्दस्ती है, कोई अपने घर में बैठकर गा-बजा भी नहीं सकता!

नंदन : गा-बजा भी नहीं सकता! बहुत अच्छा गा-बजा रहे हैं ...

दीपा : अच्छे-बुरे की सनद देनेवाले तुम कौन ... या मैं कौन ...

नंदन : सरासर गधे रेंक रहे हैं ... ताल न सुर ... किसी आवाज़ कहीं भाग रही है किसी की कहीं ... है क आख़िर?

दीपा : जो भी हों अपने को क्या लेना-देना। सब अपनी ज़िन्द जीने को आज़ाद हैं ...

नंदन : लेकिन मेरी खोपड़ी ...

दीपा : जाओ बैंक के तहखाने में रख आओ या फिर जंगल में जाकर रहो ...

नंदन : सरासर बेहूदगी है इन ऊपरवालों की और तुम ...

दीपा : लाओ अगली तसवीर दो ... इस तरह तो हमें मरने तक भी छुट्टी नहीं मिलेगी ... (थोड़ी देर दोनों चुपचाप तसवीरें टाँगते रहते हैं।)

हो... मर गये ... सब मर गये ... वह दुनिया मर गयी ... यह हो गया, वह हो गया ... हो तो गया जो कुछ होना था, बार-बार रटते क्या रहते हो... भूल जाओ... बहुत बड़ी सिद्धि है भूलना... सबसे बड़ा योग, भूलना और चुप रहना ... मैं भी जानती हूँ ... वो दुनिया और थी, वो समय और था . . वो लोग और थे .. तभी तो चले गये और हम-तुम बैठे हैं . अतुल-अतुल-अतुल ... रटो चाहे जितनी बार ... नाम रटने से कोई किसी को मिलता है ... कितने ही चक्कर लगाओ उस वीराने के ... अब कुछ हाथ आने का नहीं ... बारबार पुराने एक घाव को खोदना ... पता नहीं क्या मजा मिलता है तुम्हें .. मैं तो अन्दर जा भी नहीं सकी ... कैसा अच्छा लम्बा-सा साँवला चेहरा था ... और कैसा बटे हुए तांत के जैसा शरीर ... साल दो साल बड़ा ही रहा होगा मुझसे पर कैसा बच्चे जैसा था ... बरबस जी करता था पकड़कर छाती से लगा लें . .

नंदन : (हँसता है। अजीब फटी हुई, बेडौल हँसी।)

दीपा : (हँसी को अनदेखा-अनसुना करते हुए, पुरानी यादों में खोयी-खोयी) रेखा कितना चाहती थी अतुल को और अतुल उसकी ओर देखे भी नहीं . छाया की तरह लगी रहती थी उसके पीछे-पीछे ... मुझे तो बड़ा तरस आता था बेचारी पर ...

नंदन : हाय ! हाय !

दीपा : बचता फिरता था अतुल ..

नंदन : कठकलेजी ...

दीपा : पर वो बेचारा भी क्या करे ...

नंदन : जब उसका मन कहीं और टँगा हो ...

कहता है —)

अतुल : मैं आपसे पूछता हूँ, इक्का-दुक्का अंग्रेजों और उनके टुकड़खोरों को मारकर क्या होगा ?

जज १ : (गुस्से के मारे दाँत पीसते हुए) दूध के दाँत अभी नहीं टूटे और यह मजाल !

जज २ : (क्रोध से थरथर काँपते हुए) हिम्मत कैसे पड़ी इसकी !

जज ३ : कबूतर का दिल लेकर गुलामी का फंदा काटने निकला है !

जज १ : लगा बैठा क्यों नहीं रहा अपनी माँ के आँचल से ।

जज २ : इतने लोग जो फाँसी चढ़े, कालेपानी गये, आठ-आठ, दस-दस बरस की सजाएं काटी, सब परनाले के रास्ते बह गया !

(चारों का कुर्सी-मेज समेत प्रस्थान । नदन दीपा फिर आगे बढ़ आते हैं, प्रकाश में, और नंदन अपनी बात का सूत्र पकड़कर बोलने लगता है ।)

नंदन : ... कितना-कितना बका-झका और वह तो कहो अतुल था ... दूसरा कोई होता तो खड़े-खड़े गोली मार दी जाती ... लेकिन अतुल के माथे पर शिकन नहीं ... वैसा ही तनकर खड़ा रहा ... हल्की सी मुस्कराहट लिये जो मुस्कराहट नहीं थी, केवल दीप्ति ... हाँ इसबमकांड के बाद इतना जरूर हुआ कि अतुल को फिर किसी ऐक्शन में नहीं भेजा गया ... उसका बस एक काम रह गया ... और एक दिन वही उसकी जान का गाहक हुआ ... मिट गये... सब मिट गये ... अपनी तो दुनिया ही मिट गयी ...

दीपा : (तसवीर में डूबी हुई) थोड़ा भी ! कभी तो घड़ी चुप भी तो रहा करो ... वही एक बात बकरी की तरह मींगते रहते

नंदन : ग्वालियर ...

दीपा : देवगिरि ...

मदन : फिर कोई इस गली में बहक गया कोई उस गली में ...

दीपा : बस तुम कभी नहीं बहके ...

नंदन : —

दीपा : अभी तो ...

नंदन :

दीपा : बहके बिना कोई कहीं नहीं पहुँचा ... सीधा रास्ता सबसे लंबा, सबसे टेढ़ा होता है ..रेखा ने एक दिन मेरा मुँह नोच लिया था ... उफ, किस बुरी तरह नोचा था ... सारा लहूलुहान कर दिया ... वह तो कहो उसके बाल मेरे हाथों में आ गये ... जोर से मैंने झटका दिया ... पर वह भी आज वारा-न्यारा करने आयी थी ..छोड़ा नहीं उसने मुझको ...दर्द से चेहरा काला पड़ा जा रहा था मगर आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थी ... मैंने देखा खून था उसकी आँखों में ...फिर मैंने देखा कि मैं जमीन पर पड़ी थी और रेखा मुझसे गुँथी हुई अपने थरथर काँपते हाथों से मेरे कपड़े नोच रही थी ... जाने क्या करने पर तुली थी ..मैं बुरी तरह हाँफ रही थी ... रेखा मुझसे मजबूत भी पड़ती थी ... मेरा तो खून सूख गया उसका वह चण्डी रूप देखकर ... लेकिन मरता क्या न करता ... मैंने अपनी रत्ती-रत्ती ताकत बटोरकर एक बार ... अंतिम बार ... जोर से लात चलायी जो सीधे रेखा के मुँह पर जाकर बैठी और वह गज भर दूर गिरी, फिर तो जाने कहाँ से नयी ताकत आ गयी मुझ में ... जान की बाजी थी उस रात ...आज भी सोचकर सिहर उठती हूँ ... कहीं जो

दीपा . हाँ, अब उसका मन कहाँ और रमता हो ...

मदन : पता नहीं कहाँ ...

दीपा : वे कामरेड थे उन लड़कों को ... अब तो सब भूल गये . पुरानी बात हुई ... कितनी पुरानी बात हुई ...

मदन : लड़कियों की बात यहाँ कुछ कभी थी तो न थी ... अच्छा तमाशा था ...

दीपा : किसने कभी प्यार नहीं किया . .

मदन . कोई किसी पर मरता था कोई किसी पर ... काम सब भट्ठे में ...

दीपा : काम, काम, काम ! आदमी काम नहीं है ... काठ भी नहीं है ... सब समझेंगे लोग ...

मदन : हर चीज का वक्त होता है ...

दीपा : कुछ ऐसा भी होता है जो वक्त देखकर नहीं होता ... आदमी हर वक्त आदमी है ... वह मशीन का पुर्जा नहीं है ... दफ्तर का कागज भी नहीं जो वक्त के इंतजार में फाइल की गर्द खाता पड़ा रहता है ... अतुल ... शंकर ... मोहन ... बीना ... शोभना ... गोस्वामी ... सब प्यार करते थे ... तमाशा नहीं है ... जो किसी को प्यार करना आये ...

नंदन : ... बिसर गया ... सब बिसर गया ...

दीपा : बिसरेगा ... हजार बार बिसरेगा ... बन-बन के बिसरेगा ... आदमी सिद्धान्तों की पोटली नहीं है ... और न सूनी पटिया, कि जो मन चाहे कोई उस पर खींचा दे ...

नंदन : और कहाँ उधर हम कदम मिलाये भरतपुर के किले पर धावा करते चले जा रहे थे ...

दीपा : दलथ —

नंदन : कालिंजर ...

दीपा : देवगिरि . .

नंदन : फिर कोई इस गली में बहक गया कोई उस गली में ...

दीपा : बस तुम कभी नहीं बहके ...

नंदन :

दीपा : अभी तो . .

नंदन :

दीपा : बहके बिना कोई कहीं नहीं पहुँचा ... सीधा रास्ता सबसे लम्बा, सबसे टेढ़ा होता है ... रेखा ने एक दिन मेरा मुँह नोच लिया था . . उफ, किस बुरी तरह नोचा था ... सारा खूनोखून कर दिया . वह तो कहो उसके बाल मेरे हाथों में आ गये ... ज़ोर से मैंने झटका दिया ... पर वह भी आज वारा-न्यारा करने आयी थी ... छोड़ा नहीं उसने मुझको ... दर्द से चेहरा काला पड़ा जा रहा था मगर आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं . . मैंने देखा खून था उनकी आँखों में ... *फिर मैंने देखा कि मैं ज़मीन पर पड़ी थी* और रेखा मुझसे गुँथी हुई अपने थरथर काँपते हाथों से मेरे कपड़े नोच रही थी ... जाने क्या करने पर तुली थी ... मैं बुरी तरह हाँफ रही थी ... रेखा मुझसे मज़बूत भी पड़ती थी ... मेरा तो खून सूख गया उसका वह चण्डी रूप देखकर .. लेकिन करता क्या न करता ... मैंने अपनी रत्ती-रत्ती ताक़त बटोरकर एक बार ... अंतिम बार ... ज़ोर से लात चलायी जो सीधे रेखा के मुँह पर जाकर बैठी और वह गज़ भर दूर गिरी, फिर तो जाने कहाँ से नयी ताक़त आ गयी मुझ में ... जान की बाज़ी थी उस रात ... आज भी सोचकर सिहर उठती हूँ ... कहीं जो

हमम में किसी के हाथ में एक भोंथी छुरी भी होती ...

नदन : (मटरी में एक बिस्कुट उठाकर दीपा की ओर बढ़ाते हुए) सो कुछ खा लो थोड़ा सा ... बहुत थक गयी होगी ...

दीपा : थक तो हम दोनों गये थे ... मगर यो कुछ चीज थी भी, तुम लोगों के जैसी नहीं कि दूर ही से चार-छै गोलियाँ पिटपिटा दी ... या एक गेंद ली और उल्टे-सीधे किसी पर फेंककर भाग खड़े हुए ...

नदन : और नहीं तो क्या ... दो औरतों की लड़ाई एक मर्द के लिए ... उसकी बात ही और है !

दीपा : अरे, तुम तो सब जानते हो !

नदन : मैं न जानूँगा तो और कौन जानेगा ... मैं ही तो अनुज हूँ जो रेखा का रूप धरकर उस रात तुमसे गुँथा हुआ था ... तुम जमीन पर चित पड़ी थीं और किसी के थरथर काँपते हुए अधीर हाथ तुम्हारे कपड़े नोचकर फेंक रहे थे ...

दीपा : अच्छा ! ! ! . . जभी तो मैं कहूँ रेखा इतनी ताकतवर ... मगर तुम तो मर गये थे ?

नदन : उँह, मरना-जीना तो रोज की बात थी तब ... जब चाहा मर गये, जब चाहा जी गये ... देखता हूँ अब तुम्हें कुछ भी याद नहीं उन दिनों की ... वो सलिल भादुड़ी थे न, कैसा सूखी लकड़ी के जैसा शरीर था उनका ... सब दधीचि कहते थे उनको ... रक्तबीजवाली कहानी उन्हें बहुत पसंद थी, जाने कितनी बार न सुनी होगी उनके मुँह से ...और जैसे-जैसे लोग ज्यादा मारे जाने लगे ... बाद-बाद को तो सुना ... मैं तब नासिक जेल में था ...

रहते और थोड़ी-थोड़ी देर पर नशे में धुत आदमी की तरह वही एक शब्द बर्राते रहते, रक्तबीज ... और फिर तो एक रोज़ उन्होंने गोली ही मार ली अपने को ... अतुल की बात और थी ... अतुल मर गया मगर नहीं मरा ...

दीपा : वाह रे मेरे अतुल, तुमने मुझे बताया क्यों नहीं ! मैं तुमको नदन समझती रही, और सारी उम्र इसी में बीत गयी, गुड़ीमुड़ी सिमटी बैठी रही अपने में, कभी जी खोलकर प्यार नहीं किया ...

नंदन : सब गडमड हो गया है ... सभी कुछ गडमड हो गया है ... लो यह सतरा खा लो ... (बिस्कुट उसकी ओर बढ़ाता है)

दीपा : यह कैसा सतरा है ?

नंदन : जैसा मैं अतुल हूँ . . एक को छीलो दूसरा निकल आता है ... धीरज कभी न छोड़ना चाहिए ... सब कहते हैं धीरज का फल मीठा होता है ... जभी तो मैं चौबीस बरस से धीरज धरे हूँ और रोज़ सवेरे चिरायते के पानी से कुल्ला करता हूँ ... फिर दिन भर हर चीज़ बहुत मीठी मालूम होती है ... बाहर देखो, कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है ... मगल आया शायद ... (दीपा जाती है, फिर लौटकर आ जाती है ।)

ा : हवा थी ।

द : हवा थी ? तो आने क्यों नहीं दिया ?

ा : अपने घर में आते कितने हैं ...

न : तो क्या हुआ ?

ा : खामखाह बिखर जाते सब तरफ ... अभी चुपचाप अपने कोनो-अंतरों में लगे पड़े हैं ... उनको छेड़ना ठीक नहीं ...

नंदन : यह कोई बात नहीं ... मुझे खुली हवा पसन्द है ...

दीपा : कैसी बात करते हो ! बुढ़ापा और खुली हवा ?

नंदन : जो हो मुझको तो खुली हवा पसन्द है ... अपनी बार दरवाज़ा खटखटाये तो ...

दीपा : पागल हुए हो ! हवा भी कहीं दरवाज़ा खटखटाकर आती है ... वह तो सेंध लगाकर चुपके से घुस आती है ...

नंदन : कभी बम की तरह फटती भी है ... तब बड़े ज़ोर का धड़ाका होता है ... मगर कभी नज़र क्यों नहीं आता ?

दीपा : क्या नज़र आये !

नंदन : मानी ?

दीपा : मुर्दों की संगत में रक्खा भी क्या है !

नंदन : मैं मुर्दा हूँ ? तुम मुर्दा हो ?

दीपा : नहीं, मुर्दे से भी बदतर ! दीमक-चटे, जैसे तुम्हारी ये तसवीरें । हमें भी कोई आकर दीवार पर टाँग क्यों नहीं देता ! एक उम्र थी ... एक वक्त था ... एक बात थी ... जाने कब का सब मर-खिरा गया ... मगर तुम हो कि फिर रहे हो एक अपनी उसी लाश को सीने से लगाये ... जैसे बँदरिया अपने मरे बच्चे को छाती से चिपकाये घूमती है !

नंदन : सच कहती हो दीपा ? तुमको भी ऐसा ही लगता है ?

दीपा : मैं तुमसे अलग कहाँ हूँ ... आग के फेरे लिये हैं तुम्हारे साथ ... तुम्हारे पीछे-पीछे ... जहाँ जाओगे, साथ जाऊँगी ... दुखी मत हो नंदन ... मौसम सभी को सुखाती पड़ती ...

रहे आने की ...

दन : तो फिर हम जिन्दा क्यों हैं ?

पा : बहुत बार मैंने भी अपने से यही सवाल-पूछा है ... शायद इसलिए कि उस पर अपना कुछ बस नहीं ...

दन : ऐसी तो कोई बात नहीं दीपा ...

पा : छोड़ो भी ... कहाँ की मनहूस बात निकाल बैठे ... बात मंगल की हो रही थी ...

ल : मंगल हमारा लड़का है...

पा : लड़का किसी का हो ... उसकी दुनिया और है ...

न : किसी का नहीं, मंगल हमारा लड़का है ... उसकी रगों में हमारा खून दौड़ रहा है ...

ा : बार-बार उस एक बात को रटने से कुछ हासिल नहीं नंदन ... उसकी रगों में और भी बहुत कुछ दौड़ रहा है ... नया वक्त ... नये उसके तौर-तरीके ... हमारी दुनिया और थी ...

। : हमारा घर हमारी दुनिया है ...

: घर एक सराय का नाम है जहाँ आदमी रात को सोने के लिए आता है ... अगर आये ...

: माँ-बाप क्या ...

: बस जनम देने भर का नाता है उनसे ... जनम जो दिया नहीं गया, हो गया ... अपने सुख की पीड़ा में से ...

: बड़ी बेशरम दुनिया है ...

: बेलाग भी कह सकते हो ... अच्छा है ... जवान लड़का है ... अपना घूमता-फिरता है ... नाच-कूद ले जितना कुछ नाचना-कूदना है ... फिर तो जिन्दगी दबोच ही लेगी और यही कुछ यादें बच जायेंगी बाकी दिन काटने को ...

नंदन : भूलो मत दीपा,-ज़िन्दगी एक बड़ी अमानत है ...

दीपा : पुराने-धुराने घिसे हुए जर्जर कोट की तरह तुमने रखा तो उसे बचाकर, सहेजकर, फ़िनाइल की गोलियों में अच्छी तरह लपेटकर !

नंदन : मेरा कोट मेरे साथ चला जाएगा दीपा ... उसकी फ़िकर मत करो ... जब तक मुझे उसमें गर्मी मिलती है ...

दीपा : तुम भी जानते हो नंदन कि उसमें अब गर्मी नहीं रही ... सिर्फ़ एक आदत की बात है ... ठिठुरन नहीं जाती मगर कोट हिलगा हुआ है !

नंदन : अपनी ठिठुरन का हाल मैं बेहतर जानता हूँ दीपा ... सब मन का खेल है ... मेरे पास भी अपनी अंगीठी है ...

दीपा : सबके पास अपनी अलग अंगीठी है नंदन ... और मगन तो फिर जवान है ...

नंदन : जवान आदमी की जवान अंगीठियाँ...

दीपा : नहीं, अंगीठी पकड़कर बैठने की उसकी उम्र नहीं ... उसको तो पैरों में नये मोज़े चाहिए, हाथों के लिए नये दस्ताने और चुस्त-दुरुस्त नये ऊनी कपड़े ... जो सब उसने खरीद लिये हैं ...

नंदन : चलो अच्छा है ... जैसा है ... जो है ...

दीपा : जहाँ खून में पारा दौड़ रहा हो, कोई थिर होकर बैठे भी कैसे ... मैं कल रात उसके कमरे में गयी थी ... नींद में पड़ा पैर फटकार रहा था ...

नंदन : कोई बुरा सपना देख रहा होगा ...

में ही बीत जाती है ...

मदन : अपनी तो बीत गयी ...

दीपा : जैसी भी बीती और क्या बुरी बीती ... सब पर ... मतलब सब की ऐसी ही बीतती है ... रेखा हांफते-हांफते कहने लगी ... मैं तेरा मुंह झुलस दूंगी दीपा ... मैं तेरा मुंह झुलस दूंगी ... पूछो मेरा क्या दोष इसमें ... प्यार में भी कहीं जोर-जबर्दस्ती चलती है ? यह तो मन मिले का खेल है ... वैसी कुछ बुरी भी न थी रेखा देखने में ... रंग अलबत्ता सांवला था पर अच्छा भरा-भरा गदबदा शरीर था ... और वैसे ही रबड़ के बबुए जैसी उचकती भी रहती थी ... मैं तो सीक-सलाई थी ... पता नहीं अतुल को ऐसा क्या दिख गया मुझमें ...

मदन . (शरारत भरी हल्की सी मुस्कराहट के साथ) कुछ तो दिखा ही होगा ...

दीपा . (अपने सतो की एक तिरछी कटीली चितवन) तुम मर्दुओं की आंखें ...

मदन : आज ही तो ... अखबार में पढ़ा ... सीतापुर में एक आदमी ने अपनी बीवी की नाक काट ली ... और सो भी हंसिया-छुरी से नहीं दांतों से ...

दीपा : अच्छा है ... रहेगा जनम भर अब उसी नकटी के साथ ...

मदन : रह चुका ! किसी दिन फूंक-ताप बराबर करेगा ...

दीपा : कर चुका ! दुनिया इसी तरह रहती है — नहीं बड़ा अनोखा आया है ...

मदन : अनोखे तो हम थे दीपा ... अपना सब कुछ अनोखा था और कुछ नहीं रहा ...

दीपा : दुःख मत करो मदन ... खाली झोली लेकर चलनेवाला.

हमेशा मजे में रहता है ... यात्रा बड़े सुख की होती है ... निरापद ... जाने कितना क्या औंधाये घूमते थे हम सर पर ...

नंदन : चाहता हूँ कि भूल जाऊँ मैं भी कभी जवान था...कभी मेरे अन्दर भी बौर आयी थी ... पीली पत्तियाँ झरी थीं ... नये कल्ले फूटे थे ... और धमनियों में पाया था सार्श एक किसी निर्मल अग्नि का ... बँसवारी में आग लगी थी उस रोज... पुराने सब ठूंठ पटाखों जैसे चटाक चटाक फूटे थे ...

दीपा : और घोंसलों में पंख समेटे गुड़ी-मुड़ी सोती हुई चिड़ियाँ हड़बड़ा कर बाहर निकल आयी थीं और आकाश ढँक गया था उनसे...

नंदन : अबाबीलें थीं सब जो तीर की तरह आ-आकर गिरती थीं हम पर ... और रात के उस अँधेरे में हम चौंक-चौंक जाते थे, क्योंकि हमें उनके होने का पता न था ... फिर किसने मुझसे और मैंने तुमसे कहा ...

दीपा : और मैंने चित्रा से कहा और चित्रा ने महेश से कहा ...

नंदन : और महेश ने अम्बिका से कहा और अम्बिका ने हरिहर से कहा ...

दीपा : और हरिहर ने जगदीश से कहा और जगदीश ने माधव से कहा ...

नंदन : और माधव ने बेला से कहा और बेला ने शारदा से कहा

दीपा : ... क्या कहा ?

नंदन : यह कौन जानता है ... या जान सकता है ... जो तुमसे कहा जाय उसे तुम अगले आदमी तक पहुँचा दो ... बात इसी तरह फैलती है ... सवाल मत पूछो ... अतुल ने क्या

दिया था ...

दीपा : (सबक दुहराने की तरह) भविष्य हमें पुकार रहा है ... वह देखो हिमालय की चोटी पर नया अरुणोदय हो रहा है ... आओ हाथ से हाथ बाँध लें ... (मदन आगे बढ़कर दीपा के हाथ में अपना हाथ डाल देता है) वन्देमातरम् वन्देमातरम् ... (मदन दो-तीन बार, नींद से जागे हुए आदमी की तरह, रबर के बबुए की तरह जय ... जय ... जय ... पुकारकर चुप हो जाता है ।) दिशाएँ रक्तिम हो चलीं ...

मदन : यह हाथ कैसा आटे की लोई जैसा पकड़ा रक्खा है तुमने ... कसकर पकड़ो कसकर .. न हो ऊपर जाकर दस-बीस डंड बैठक लगा लो ... कसाव होना चाहिए बदन में .. आओ-आओ ... शरमाओ नहीं . . शरमाने की इसमें कोई बात नहीं . . सब अपने ही लोग हैं ... अपना खेल देखने आये हैं ... कसबल के बिना कुछ नहीं होने का ... ढोलो तो डफली भी नहीं बजती ... उसको भी आँख दिखानी पड़ती है ... अतुल का सचमुच कसरती बदन था ... मैं तो हमेशा का ऐसा ही हूँ ... और अब तो और भी फक्कड़ हाल है ... यह ठीक नहीं ... (दो-चार डंड-बैठक लगाता है) अब बात बनी कुछ ... छुओ ज़रा ... (दीपा खड़ी रहती है) छूकर तो देखो .. (दीपा आगे बढ़कर एक उँगली की पोर से छूती है) कुछ नहीं है दीपा कि काट लेगा .. और आओ अब पैर मिलाना सीखो ... बहुत ज़रूरी चीज़ है ... दिल दिमाग़ मिले न मिले, सब चलता है ... पैर मिलाये बिना कुछ नहीं होता ... बढ़ाओ ... तुम भी बढ़ाओ ... (दोनों थोड़ा चलते हैं)

नहीं, बात नहीं बनी... तुम्हारा टाइमिंग ठीक नहीं... (नदन अकेले ही थोड़ा-सा लेफ्ट-राइट करके दिखाता है) न हो ज़ोर-ज़ोर से लेफ्ट-राइट बोलकर प्रैक्टिस करो ... तुम्हें भी तो याद होगी... वो हमारे ड्रिलमास्टर गंगाधर मेंढ़े ... बड़ा जल्लाद आदमी था ... पुराना फौजी ... एक नहीं सुनता था किसी की ... आते ही सब को फॉल-इन करा देता था ... पागल था ड्रिल के पीछे .. घंटों परेड करवाता था ... हम लोग आते क्या-क्या सोचकर आये थे ... इसकी तोप उड़ा देंगे ... उसकी गर्दन मरोड़ देंगे ... इसको गोली मार देंगे, उसका तख्ता पलट देंगे... यों से बम बनायेंगे... यों से इलाइन पिस्तौल चलायेंगे और इस मेंढ़े के बच्चे ने ड्रिल करा-करा के कचूमर निकाल दिया... ठिगना-सा आदमी था ... मेंढ़े का बना समझो.. और कैसी तो उसकी आँखें थीं . . मिचे

(करके दिखलाता है) ... एक बार ... दो बार ... तीन बार ... आखिर ईंट दो टुकड़े होकर गिर गयी ... छोड़ो न उसको, पकड़े क्या हो ऐसा जकड़कर ... नाटक करना भी नहीं आता तुमको ... (दीपा अखबार छोड़ देती है) बहुत बचपन में देखा था उस मेढ़े का खेल ... पत्थर की लकीर बन गया ...पीछे इस मेढ़े से पाला पड़ा ... और मज़े की बात यह थी कि शकल भी मिलती थी दोनों की ... सब गडमड हो गया ... उस मेढ़े को इस मेढ़े गंगाधर की खोपड़ी मिल गयी ... और इन पचीस-तीस बर्षों में न जाने कितनी बार वही एक सपना पलट-पलटकर आया होगा ... एक सफ़ेद-सी दीवार है ... जिधर नज़र घुमाता हूँ वही एक सफ़ेद-सी दीवार है ... एक मेढ़ा जिसका सर गंगाधर का है और जो मैं हूँ ... हर बार मैं उसी तरह नाक की सीध में दौड़ता हुआ आता हूँ और उस दीवार में टक्कर मारता हूँ ... मगर दीवार नहीं हिलती ... और उस सपने ही में मैं अपने से कहता हूँ कि यह सपना झूठा है ... मैंने देखा था कि ईंट दो टुकड़े होकर बाबाजी के हाथ से नीचे गिर गयी थी ... उसी उलझन में मेरी आँख खुल जाती है और मैं देखता हूँ कि उसी तरह की दीवारें मेरे चारों तरफ़ हैं और मैं पर बिस्तर पड़ा सो रहा हूँ ...

दीपा : सोने से अच्छा कुछ नहीं है ... एक मरहम सभी दर्दों का ... नींद ...

नदन : अगर आये ...

दीपा : आयेगी ... आयेगी ... कब तक न आयेगी, आँख मूँदकर तो देखो ...

नदन : नींद है कि और भी उड़ जाती है ... दम घुटने लगता है ... दीवारें सिमटती चली आती हैं ... कि जैसे एक सिल रखी हो सीने पर ... और मैं डरकर आँख खोल देता हूँ ... कितने सब चेहरे नजर आते हैं आँख मूँदने पर ... जवान ... हिम्मतवर चेहरे ... जिन पर फफूंद लग गयी है ... या तेल-पुते चिकने चेहरे ... ढेरों जो मर गये ... ढेरों जो टूट गये ...

दीपा : मैंने कहा था सब तरफ ये आइने मत जड़वाओ ... जाने क्या सूझी तुम्हें ... खाली-खाली दीवारें कितनी अच्छी लगती थीं ... सजी-धजी तस्वीरें मैंने टाँग रखी थी ... रंग-बिरंगे कैलेण्डर इतने वर्षों के ... सब हटाकर अब ये आइने तुमने खड़े कर दिये ... अब कहाँ जायें ... दीवारों के आँखें हो गयी हैं ... तुम देखो या न देखो, कोई तुम्हें हर वक्त देखता रहता है ... जहाँ भी हो ... जिस भी दीवार पर ... सब इन्हीं मनहूस आइनों का खेल है ... दीवारें सिमट आती हैं ... सीने पर कोई एक चक्की-सी रख जाता है ...

नंदन : वह चक्की सूनेपन की है दीपा ... खूब महीन पीसती ... खंडहर सपनों का ... (ऊपर से खूब तेज बाजे की आवाज आ रही है — लय भी तेज, सुर भी तेज जैज।) बजा लो ... बजा लो ... जितना बजाना है ... आज मैं इसका तस्फिया करके रहूँगा ...

दीपा : यह क्या जबर्दस्ती है तुम्हारी ... सब अपने घर के राजा हैं ...

नंदन : राजा हैं तो क्या सबको फाँसी लगा देंगे ...

दीपा : अच्छी फाँसी लग रही है तुम्हें ... लाओ दो और क्या

लगाना है ?

नंदन : (सूले बक्से में से पुलिंदा उठाकर दिखाते हुए) अभी तो इतनी सारी बाकी हैं ... और दीवारें दोनों भर गयीं ... आओ यह तीसरीवाली पट्टी टाँग दें ...

दीपा : जल्दी करो अब जो कुछ करना हो ... तबियत घबरा गयी ...

नंदन : लो यह सिरा पकड़ो और उधर उस पट्टी से टाँक दो ... खड़ी हो जाओ कुर्सी पर . डरो मत, गिरोगी नहीं ... (पट्टी टँग जाती है और दोनों चुपचाप बा तसवीरें उस पर पिन से लगाते रहते हैं। डेढ़-दो मिनट शेष सब तसवीरें टँग जाती हैं। तसवीरों के साथ तीसरी पट्टी हवा में झूलने के कारण, झालर या बद वार के जैसी दिखायी पड़ती है। ऊपर, यानी नेपथ्य संगीत अपने चरम पर पहुँचा हुआ है। मंच उसके में डूब-सा गया है।)

न : (ज़ोर से) चलो छुट्टी हुई .. कई दिन से इरादा कर र था।

पा : मंदिर तुम्हारा ...

न : मंदिर-मक़बरा जो कहो ... बस्ती के बाहर, पीपल तले एक खंडहर ... जाने किस सदी का ... जहाँ मुर्दा भटकती हैं।

पा : जहाँ अपनी देव-प्रतिमा है ...

न : और जहाँ आदमी अपनी मौत मर सके ... मगर अच्छा हुआ हम इन्हें बाहर ले आये ... अन्दर तो दीमक खा ज ... बक्से में बन्द-बन्द ... एक प्याली चाय दोगी ...सी हो गयी है ...

बरस का बीहड़ पथरीला सफ़र ... (ऊ

नाचने-गाने-बजाने का शोर अपने शिखर पर पहुँचा हुआ है)

मदन : (उस शोर से एकदम चिढ़कर) सुन रही हो दीपा ?... यह कोई बात नहीं ... मैं भी किसी से झगड़ना नहीं चाहता लेकिन यह कहाँ का इन्साफ है . . कुछ तो ख्याल रखना चाहिए दूसरों का . देखो न क्या बला का शोर मचा रखा है। अपनी आवाज नहीं सुनायी देती। एक-आध दिन की बात हो तब भी कोई बात है, हर रोज यही ऊधम ... पता नहीं कौन लोग हैं . कहाँ तक बरदाश्त करे कोई ... मैं जाकर पूछता हूँ इनसे ... (जाने को होता है)

दीपा : [illegible] है। [illegible] मुझे [illegible] । [illegible] मुझसे शिकायत करने ।

मदन : नहीं [illegible] कोई [illegible] नहीं। फिर [illegible] । [illegible] के [illegible] को [illegible] रहना है

दीपा : आजकल [illegible] हैं। मैं कहती हूँ मदन, [illegible] ।

(मदन [illegible] जाता है।)

दीपा

सारा ढांचा एक भूचाल से हिल रहा है मगर एक सब्र है जो हर चीज़ पर भारी है। आँसू हलक तक आकर रोक दिये गये हैं, आँखें बिल्कुल सूखी हैं। एक टूटा हुआ आदमी, जैसे इन्हीं दो मिनट में उसकी उम्र पचास साल बढ़ गयी हो। दीपा डर जाती है उसकी यह शक्ल देखकर। इतना तो उसने भी नहीं सोचा था। नंदन एक बार ठहरी हुई नज़र से दीपा को देखता है मगर मुँह से कुछ भी नहीं कहता और धीरे-धीरे जाकर अपनी कुर्सी पर सर पकड़कर बैठ जाता है। उसकी आँखें बन्द हैं और साँस तेज़ चल रही है। दीपा धीरे से आकर उसकी कुर्सी के पीछे खड़ी हो जाती है। माथे पर हाथ लगाना चाहती है मगर रुक जाती है। कुछ कहने को होती है लेकिन एकाएक जैसे हिम्मत नहीं पड़ती। फिर अन्दर जाती है और एक गिलास पानी ले आती है।)

दीपा : मैं कहती थी ...

नंदन : (माथे पर से हाथ अलग करते हुए) तुम कुछ नहीं कहती थीं ... कुछ नहीं कहा तुमने ...

दीपा : कितना मना किया था मैंने ...

नंदन : तुम झूठ बोलीं ...

दीपा . मैंने कुछ झूठ नहीं कहा ...

नंदन : झूठ बहुत तरह का होता है दीपा ...

दीपा : झूठ बस एक तरह का होता है ... जो आदमी अपने से बोलता है .. मैंने तुमसे कुछ झूठ नहीं कहा ...

नंदन : तुम्हें पता था कि ऊपर कौन रहता है ...

दीपा : मैंने मना किया तुम्हें ... मत जाओ — मत जाओ ... हर बार मना किया ...

नंदन : तुम्हें पता था कि वो अच्छे लोग नहीं हैं।

दीपा : अच्छे-बुरे की पहचान मेरे लिए अब उतनी आसान नहीं रही नन्दन ... सब कुछ धुँधला दिखायी देता है ...

नंदन : बहलाओ मत दीपा ... मैंने देख लिया ... उस धुँधलके में भी देख लिया ... और बड़ा अंतर है सुनने और देखने में ... बिजली की रोशनी में चाँदनी का समाँ ... बदमस्त पियक्कड़ों की एक टोली ... लड़के-लड़कियाँ ... नशे में धुत .... गलबहियाँ डाले ... और उन्हीं के बीच मगन ... तुम्हारा मगन ...

दीपा : मगन ?

नंदन : हाँ मंगल . इतना चौंको मत ... तुम सब जानती हो ... तुमने ठीक मना किया था ... मुझे नहीं जाना था ...

दीपा : कोई झगड़ा-फसाद तो ...

नंदन : नहीं, झगड़ा क्यों होता ...

(मगन आता है। गुस्से के मारे उसका बुरा हाल है।)

मगन : ... थड़थड़ाते हुए ... किसने कहा था ... क्या हक था आपको ..

नंदन : तुम होश में नहीं हो मगन .. कल बात होगी ...

मगन : बात आज होगी और अभी होगी ...

नंदन : मैं कह रहा हूँ मगन, अभी चले जाओ ... तुमने क

मदन : एटीकेट ...

मगल : जी हाँ एटीकेट ... तहजीब और किस चिड़िया का नाम है ?

मदन : हे राम, कैसे बफ़ारे छूट रहे थे मुँह से ...

मगल : आपकी बला से ... आप गये क्यों ? किसने बुलाया था आपको ?

दीपा : मगल !

मगल : नहीं माँ, आज मैं इस चीज़ का तस्फ़िया करके ही रहूँगा। मेरी प्राइवेट ज़िन्दगी में किसी को टाँग घुसेड़ने का हक़ नहीं।

मदन : बहुत दिनों से सुनता आ रहा था ... जिसके-तिसके मुँह से ... आज अपनी आँखों से देख लिया ...

मगल : हाँ हाँ, मैं शराबी हूँ, जुआरी हूँ, बदचलन हूँ, सब हूँ, किसी को मतलब ?

मदन : समाज में रहने के कुछ नियम भी होते हैं ...

मगल : वाह रे आपका समाज और वाह रे उसके नियम ... थू ... सब पाखंड है, झूठ का व्यापार ... यहाँ से वहाँ तक ...

मदन : अच्छा तो आप उसको ठीक करने निकले हैं !

मगल : जी नहीं, ठीक करने नहीं निकला हूँ, वो आप जैसे पैगंबरों का काम है ... मुझमें उतनी सफ़ाई कहाँ ... खुद जी लूँ, बहुत है ...

मदन : जो तो अच्छा खासा रहे हो !

मगल : तो आपको मिर्च क्यों लगती है ?

मदन : मुझे क्या ...

मगल : झगड़ा फिर किस बात का है ? लड़ने क्यों पहुँचे थे ?

नंदन : मेरी शामत आयी थी ...

मंगल : आयी नहीं, आ जाती, अगर मैं वहाँ न होता ...

नंदन : शुक्रिया बेटा, बहुत-बहुत शुक्रिया !

मंगल : एक धक्के में आप लुढ़कते-लुढ़कते नीचे नज़र आते, अभी बैठे न होते ज़बान चलाने को। आप उन्हें जानते नहीं ... बहुत बुरे लोग हैं वो ...

नंदन : ऐसा मत कहो बेटा, तुम्हारे साथी हैं !

मंगल : किसी की बेहूदगी उन्हें पसन्द नहीं। यही तो उनकी बात अच्छी लगती है मुझे ... अपनी ज़िन्दगी है, जैसे चाहते हैं जीते हैं ...

नंदन : ज़िन्दगी ! यह भी कोई ज़िन्दगी है ? सुअरों की ज़िन्दगी !

दीपा : यह सरासर बेइन्साफ़ी है नंदन। तुम कौन हो ... क्या हक़ है तुम्हें ... तुमने क्या ठेका लिया है सारे ज़माने का !

(नंदन कुछ बोलने को होता है, मंगल बीच में ही बोल पड़ता है।)

मंगल : आपने कोई ख़ुशी नहीं जानी ...

नंदन : कैसे नहीं जानी ...

मंगल : ... तो दूसरा कोई क्यों ख़ुश रहे...सब लोग आपकी तरह मुँह लटकाये क्यों नहीं घूमते ! सबके सीने पर वह पहाड़ क्यों नहीं है जो आपके सीने पर है ! लोग हँसते क्यों हैं, नाचते क्यों हैं, शराब क्यों पीते हैं ! ... बीमार आदमी जैसे सारी दुनिया को बीमार देखना चाहता है !

नंदन : बीमार कौन है, यह तुम अपने दिल से पूछो ...

मंगल : हैं, शायद हम भी बीमार हैं, मगर आपसे अच्छे हैं ... सारी ज़िन्दगी भाड़ लीपकर हाथ काला किया, मिला क्या ! दो कौड़ी

एक कोने में ! किसी को आपकी तरफ पलटकर देखने की भी फुर्सत नहीं ... भगदड़ मची है। सब अपनी सड़ी-बुसी पर्चियां लिये बैंक की तरफ भागे जा रहे हैं, जो पहले पहुंच जायेगा भुना लेगा, जो रह जायेगा रह जायेगा ...

नदन : भुनाने दो, जिसे भुनाना हो ... मैं उस दौड़ में नहीं हूं ...

मंगल : क्योंकि उसका बूता नहीं है ...

नदन : नहीं, इसलिए कि वह चूहों की दौड़ है और मैं चूहा नहीं हूं।

मंगल : तो बैठे रहिए अपनी मांद में ... उस दिन का इन्तजार करते जब शेरों की दौड़ होगी ...

नदन : हुई थी ... वह भी एक दौड़ थी अपने ढंग की ...

दीपा : मगर तुम भूलते हो नदन, उस दौड़ में भी चूहों की कमी न थी ... वक्त का रंगीन पर्दा बड़े-बड़े जादू कर देता है ... वो ढेरों शेर तुम्हारे जो गरजते थे तो आसमान कांप जाता था और जो पीछे चूहों में बदल गये !

नंदन : उसका कोई इलाज नहीं ... आदमी बस अपने को देख सकता है ... उतना ही बहुत है ...

मंगल : नहीं उतना काफी नहीं है क्योंकि जमाना अपनी चाल से है। उससे पांव मिलाकर जो न चल सके वो फिक

लोगों के बीच पड़ जायें तो मुँह से बोल नहीं फूटते उनके, घिग्घी बँध जाती है, वही साले आज मोटरों में दनदना रहे हैं और मैं इस दरवाज़े से उस दरवाज़े जूतियाँ चटखाता फिर रहा हूँ, कोई सीधे मुँह बात भी नहीं करता ... कहाँ जाऊँ मैं ? क्या करूँ ? है कोई रास्ता ? किससे फरियाद करूँ ?

नंदन : ——————

मंगल : बोलते क्यों नहीं ? बगलें क्यों झाँक रहे हैं ? मैं भी कहीं ढंग का कुछ काम कर रहा होता, मगर आप के मुँह से तो सत्य और न्याय का दही जमा था। सत्य और न्याय ! जहाँ सब तरफ... सब तरफ ... दूर-दूर तक ... जहाँ तक नजर जाती है ... केवल झूठ केवल अन्याय की ही शान के साथ सर उठाये खड़ी है ... मगर आप जैसे सावन के अंधों की तो दुनिया ही और है ! बहादुर क्रांतिकारी हैं न, देश के लिए बड़ी-बड़ी कुर्बानी की है, बरसों जेल में रहे हैं, बरसों फ़रार रहे हैं, किसी के आगे मुँह कैसे खोलें ! क्या बात है ! वाह-वाह ! एक आदमी तो मिला इस पचास करोड़ के मुल्क में जो अपने सिद्धान्तों का पक्का है। (ताली बजाता है) बजाइए ... बजाइए ... आप लोग भी ताली बजाइए ...एक नये अवतार का दर्शन मिल रहा है आपको ! आज के बाद फिर देखने को नहीं मिलेगा ... आखिरी आदमी अपनी पीढ़ी का ... आखिरी पैग़म्बर ... बड़ा जबर नसीब है आप जो आपने उसे देख लिया ... और मेरे नसीब का ! कहना ...मेरा तो वो बाप ही है ... जैसा भी है ...

दीपा : मंगल, तुम होश में नहीं हो !

मंगल : नहीं-नहीं वैसा कुछ नहीं ... बेटा तो मैं आप ही का हूँ ... अवतार अच्छे बाप नहीं होते शायद ... सच तो ये है कि उन्हें इन चीज़ों से दूर ही रहना चाहिए ... मज़े से जंगल में धूनी रमायें, क्या फायदा दुनिया के प्रपंच में पड़ने में ... अपनी भी दुर्गत, दूसरे की भी दुर्गत ...

मदन : मेरे लिए तुम्हें आँसू बहाने की ज़रूरत नहीं ...

मंगल : बुलबुलो मत रो यहाँ आँसू बहाना है मना ... सुना है आप लोगों का बड़ा चहेता गाना था ये !

दीपा : वो तुम्हारे जनम से पहले की बात है मंगल ... तुम उसका हाल क्या जानो ...

मंगल . मुझे शौक़ भी नहीं है माँ ... बड़ा अच्छा हुआ कि वो दुनिया मर गयी और मैंने एक नयी दुनिया में आँखें खोली जो हर चीज़ को अपने सही नाम से पुकारना जानती है ... जिसने आँखों पर रंगीन चश्मा नहीं चढ़ा रक्खा है ... जिसके सीने में इतनी ताक़त है कि अँधेरे को अँधेरा कह सके, इन्द्रधनुष की बातें न करे जहाँ कोई इन्द्रधनुष नहीं है ... खोखली बातें ... मुर्दा बातें ... जो सिर्फ अपने को बहलाने और दूसरे को ठगने के लिए की जाती हैं ...

मदन : चलो, तुम्हारी आँखें तो खुल गयीं !

मंगल : हाँ, खुल गयीं और अच्छी तरह खुल गयीं ... नियम-समाज कहीं कुछ नहीं है ... धोखे की टट्टी ... सीधा-सीधा जंगल का राज है ... जिसकी लाठी उसकी भैंस ... खुल गयी कलई ... अब दुबारा वो काठ की हाँडी नहीं चढ़ने की ... नियम-समाज ... (घृणा की हँसी, और फिर एकाएक उत्तेजित होकर) नियम-समाज सब इसी में है

कि कौन किसके साथ पीता है, किसके साथ नाच
किसके साथ सोता है ... झांकते फिरो एक-एक के
मे, सूंघते फिरो ... और तो कही दिखायी नहीं प
आपका नियम-समाज ...

मदन : है ... मगर आंख चाहिए उसके लिए ...

मंगल : होगा ... आपके घर मे होगा ... जैसे और भी बहुत
काठ-कबाड है ... चोचले दुनिया को ठगने के ... जो
है किसी न किसी को उल्लू फांसने मे लगा है ... बस
सामनेवाले की आंख झपे और वो उसका बुकचा ले
चपत हो .... यही आपका समाज है जहां पैसे की तू
बोलती है ... इससे किसी को बहस नही कि वो पै
आया किस रास्ते ... कोई गया उस कल के छुर्के अभी
रामदयाल से पूछने कि वह कैसे रातों रात सेठ ब
गया ?

मदन : सब कहने की बातें है। सच्ची इज्जत कभी ऐसों
नहीं मिलती ...

मंगल : समाज मे जिसे इज्जत कहते हैं, मान-सम्मान ... शह
के बडे मे बडे, नामी से नामी लोगो के साथ उसका
उठना-बैठना है ... कही किसी सभा-सोसाइटी मे पहुंच
जाय तो सब लोग उसकी अगवानी करने को लपकते हैं
... बैठने लगे तो बीस लोग गद्दी-मसनद लेकर दौड़ते हैं
... सच्ची इज्जत और किस चिड़िया का नाम है ?

मदन : जो आदमी को अपने भीतर से मिलती है ...

मंगल : फिर वो
रहे थे ?

मंगल : क्या कहने ... बहुत बड़ी ... बहुत बड़ी ... और उतनी ही गड़बड़ ... जैसे उलझा हुआ ऊन का गोला जिसका सिरा नहीं मिलता ...

नंदन : अपने भीतर खोजने से सब मिल जाता है ...

मंगल : क्या मिला ? ... खोज तो रहे हैं आज चालीस साल से ?

नंदन : मिला जो कुछ मिलना था ... तुम नहीं समझोगे ...

मंगल : चाहता भी नहीं ... अपने पास ही रखिए ... अच्छी तरह सँभालकर, छाती से लगाकर ... जैसे बर्फानी सर्दी के मुलुक-वाले अपनी काँगड़ी रखते हैं ... ठिठुरन में उसके बिना काम भी तो नहीं चलता ! मगर मैं क्या करूँगा उसका ? ... आपको मुबारक हो आपकी वो सच्ची इज्जत ... चबाये हुए पान की सीठी जैसी ... कूड़े के ढेर में फिकी हुई ... मैं तो दुनिया के साथ दौड़ूँगा ... ठीक उसी तरह जैसे दुनिया दौड़ती है ... ठीक उन्हीं चीजों के लिए जिनके लिए दुनिया दौड़ती है ... रुपया-पैसा ... मोटर-बंगला ... शराब ... औरतें ...

दीपा : क्या बक रहे हो मंगल !

नंदन : शर्माते भी नहीं तुम !

मंगल : मैं क्यों शर्माऊँ ... शर्मायें आप, जो इतने घमंड से अपनी नाकामियों का इश्तहार टाँग रहे हैं ... ये जो परचूनियों जैसी झालर लटका रखी है आपने, चिंदियों की ... ये क्या है ? चाय की चुकनी ... ये क्या है ? साबुन का चूरा ... ये क्या है ? एनासिन की टिकियाँ, जिनसे हर दर्द रफा होता है ... वही पुरानी दीमक चटी तसवीरें ... कमाई एक जिन्दगी की ... खुद भी जो लटक जाइए इन्हीं के

राख ... एक तसवीर और भी, उसी निपट व्यर्थता की ... एक जिंदगी जो फुलझड़ी की तरह जलकर राख हो गयी

नंदन : एक दिन तो सभी कुछ राख हो जाता है मंगल...लेकिन खुद से जलकर राख हो जाने में भी कुछ मजा है, वो दूसरे को बताया नहीं जा सकता ...

मंगल : कभी इतिहास की किताब में पढ़ा था कि लार्ड विलियम बेंटिंक ने सन् १८३५ में सती-प्रथा का अंत कर दिया!

नंदन : अपने भीतर के सत से चिता पर बैठनेवाले को कभी कोई विलियम बेंटिंक रोक नहीं सका बेटा ...

मंगल : सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है ...

नंदन : जाने कितने बहादुर यही गुनगुनाते हुए फाँसी पर झूल चुके हैं मंगल...-हर चीज मुँह चिढ़ाने की नहीं होती। वो दुनिया और थी ... हमारी दुनिया ...

मंगल : मर गयी बाबू, मर गयी ... नासमझ जान से हाथ धो बैठे, समझदार सोने-चाँदी की छतरी लगाये बैठे हैं ... और इक्का-दुक्का खँडहर उस मुर्दा वक्त का जहाँ अब कुत्ता भी रोने नहीं आता ... किसी ने घूमकर देखा भी नहीं तुम्हारी तरफ, जीते हो कि मर गये ...

नंदन : न देखे, मेरा क्या ...

मंगल : धूर पर फिंके पड़े हो ... चूल्हे की ढेरो राख, जूठन, छिलकों और अपने इन खँचिया भर कुकुरमुत्तों के बीच .. (तेजी से आगे बढ़कर एक तसवीर झटके से नोच लेता है)

नंदन/दीपा : (दर्द की एक गूँजती हुई चीख जैसे घायल शेर दहाड़े) मंगल !

(नंदन आगे बढ़कर मंगल के सामने खड़ा हो जाता है)

मंगल : (ठिठककर, फिर उद्धत भाव से हँसकर हथौड़ा-सा मारते हुए) कब तक बचाओगे अपनी इन बासी-पुरानी सड़ी-गली तसवीरों को ! किस किस के हाथों से !

दीपा : छोड़ो, मंगल, छोड़ो ...

मंगल : (अपनी बात की रौ में) धुल गयी, पुंछ गयी, समय चाट गया उनको ... कुछ नहीं रक्खा अब इन तसवीरों में ... (फर्श पर से वह नुची हुई तसवीर उठाकर नंदन को दिखाते हुए) मुड़ा-तुड़ा एक मटीला कोरा कागज़ ... कोरा कागज़ ... जैसे ऊसर-बंजर खेत, जहाँ (चुटकी से इशारा करते हुए) इतनी सी हरियाली नहीं ... काहे की हिफाज़त में इस तरह तनकर खड़े हो तुम ? (ढिठाई से एक और तस्वीर नोचकर फेंक देता है। नंदन अब और नहीं सह पाता, ज़ोर से हाथ घुमाकर एक झापड़ मंगल को रसीद करता है ... और फिर खुद अपना सर पकड़-कर ज़मीन पर बैठ जाता है, और शायद रोने लगता है)

दीपा : (चीखकर) नंदन ! ... यह क्या किया तुमने ! जवान बेटे को ...

(मंगल गुस्से में तेज़ी से बाहर निकल जाता है। दीपा 'मंगल मंगल' पुकारती हुई उसके पीछे भागती है। नंदन खोये-खोये भाव से बैठा शून्य में ताकता रहता है। तस-वीरों की झालर हवा में काँप रही है। ऊपर से संगीत का ही शोर है। धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।)

শতাব্দী

प्रथम प्रस्तुति / सहयोगी मंच, प्रयाग, ७ मई १९७१
निर्देशक : सुरेश बिहारी लाल

पात्र-परिचय

चन्दर / नाक-नक्श अच्छा । रंग साँवला । उम्र चालीस के आसपास । व्यवसायी । धनपति ।

खन्ना / गोरा-चिट्टा । उम्र चालीस के आसपास । व्यवसायी । धनपति ।

धड़ानी / सुंदर युवक । उम्र पचीस के आसपास । व्यवसायी । धनपति ।

सक्सेना / दुहरा बदन, मांसल होंठ, रंग साँवला । उम्र पचपन के आसपास । व्यवसायी ।

शीला / कैबरे नर्तकी ।

किशोर / विद्रोही-दल का नेता । दुबला-पतला गन्दुमी रंग । मँझोला क़द । उम्र पच्चीस के आसपास । घनी दाढ़ी और मूँछ । आँखों में एक आग जो उस चेहरे को वैशिष्ट्य देती है ।

चित्रा / साँवला-सलोना चेहरा । उम्र पच्चीस के आसपास । आँखों में उदासी ।

प्रीतमसिंह / घनी दाढ़ी और मूँछ । उम्र बीस के आसपास ।

पीताम्बर / लम्बे बाल । दाढ़ी-मूँछ साफ । उम्र अठारह-उन्नीस ।

सतीश / छोटे-छोटे बाल । मूँछ की हलकी-सी रेख । उम्र

सरताज
आनंद
रोमी
नीरू | किशोर के दल के और कुछ लड़के।

आश्विन / विरोधी दल का नेता

कुणाल / आश्विन का साथी

अविनाश / पुलिस कप्तान। इकहरा, कसरती बदन। पतले होंठ। पैनी आँखें। गोरा रंग। उम्र पच्चीस के आसपास।

समय : यहाँ। स्थान : यहाँ।

अंक : १

(आलीशान होटेल कासानोवा के बड़े हॉल का एक कोना, जो आज और भी जगमगा रहा है। 'कल्याणी' के सालाना जलसे के उपलक्ष में एक स्टैग पार्टी का आयोजन है, अर्थात् केवल पुरुष आमन्त्रित हैं। अवसर के अनुकूल सजावट है। रंग-बिरंगी झंडियाँ लहरा रही हैं, गुच्छे के गुच्छे गुब्बारे जगह-जगह छत से लटक रहे हैं। बड़े बड़े झाड़-फानूस हैं। फ़र्श पर मोटा क़ालीन है। मंच के बायें तरफ़ विंग्स में भी दो-एक लोग खड़े हैं जिससे पता चलता है कि हॉल और आगे तक चला गया है।

मंच के दाहिने कोने पर बार है, जिसमें अच्छी से अच्छी विलायती शराबों की बोतलें क़रीने से सजी हैं। बार के सामने एक ख़ूबसूरत काउंटर, जहाँ पर हर वक़्त लोग आ-जा रहे हैं। एक टोली वहीं पर खड़ी होकर पी रही है।

मंच के बायें कोने पर, सामने को, शीशे की आलमारी में एक नन्हा-सा मछली-ताल, जिसमें रंग-बिरंगी सोनमछलियाँ खेल रही हैं।

मंच के बीचोबीच, ज़रा-सा बायें को, एक लड़की नाच रही है। जहाँ जैसी सुविधा हो, यह नृत्य कैबरे, ट्विस्ट, कत्थक, भरतनाट्यम, कुछ भी हो सकता है, लेकिन शायद कैबरे या ट्विस्ट देना ज़्यादा अच्छा होगा, क्योंकि आग्रह नारी-देह के प्रदर्शन और उद्दीपक चेष्टाओं पर है।

नाच हो रहा है और कुछ लोग अपनी गद्देदार कुर्सियों में धँसे हुए उसका आनन्द ले रहे हैं। ये लोग वास्तविक भी हो सकते हैं और काल्पनिक भी। काल्पनिक रखना शायद ज्यादा अच्छा होगा। बस एक लड़की नाच रही है या द्विवस्ट होने पर एक लड़की और एक लड़का, दो लोग नाच रहे हैं; शेष सभी कुछ काल्पनिक है — दर्शक, ऑर्केस्ट्रा, कुर्सियाँ, सब कुछ। दोनों के बीच की एक स्थिति यह भी हो सकती है कि नेपथ्य में नाच का ऑर्केस्ट्रा बज रहा है, गद्देदार कुर्सियाँ लगी हैं और उन पर सूटेड-बूटेड काठ के पुतले बैठे हैं जैसे कपड़े की बड़ी दूकानों में मिलते हैं। निर्देशक को पूरी छूट है, जिस भी रूप में चाहे इस दृश्य का विधान कर सकता है।

बरसात का बदतरीन मौसम है। रह-रहकर बादल गरजते हैं, बिजली चमकती है, आँधी की सायँ-सायँ सुनायी पड़ती है। लेकिन खिड़की-दरवाजे सब बंद हैं, पर्दे खिंचे हैं, जिससे सभी आवाज मद्धिम होकर अन्दर आती हैं। ऊपर के रोशनदान से बिजलियों के कौंधे जरूर अन्दर नजर आते हैं। लेकिन यह एक अलग ही दुनिया है जहाँ पर सब लोग, कम से कम इस वक्त, अपने ही मरों में चूर हैं, अपने रागरंग में डूबे हुए, सुरक्षित।

रोशनियों की मदद से इस दृश्य की सज-सज्जा इसी तरह होनी है कि जैसे यह एक शीशमहल हो, चाँदनी में नहाया हुआ एक परियों का देश, जिसे बाहर के आँधी-पानी का कुछ गम नहीं, जहाँ आनन्द ही आनन्द है। अन्दर आने का रास्ता पूरब से है। उत्तर को एक बड़ी-सी खिड़की है, बेखिड़ी, चौड़ी और ऊँची, जो शुरू में कुछ देर खुली रहती है, फिर मौसम

जाती है और उस पर दरवाजे के जैसा ही भारी पर्दा खींच दिया जाता है।

पाश्चात्य संगीत बज रहा है, कभी धीमा, कभी तेज़।

पर्दा जब उठता है, मंच रोशनी से जगमगा रहा है। कुछ देर यही चौंधिया देनेवाली रोशनी रहती है, इतनी कि सब कुछ अवास्तविक-सा लगने लगता है। फिर रोशनी धीरे-धीरे मन्द से मन्दतर होती चली जाती है, यहाँ तक कि बस इतनी रोशनी बच रहती है, जितनी सांझ के झुटपुटे में होती है, जिसमें आकृतियाँ डोलती दिखायी पड़ती हैं मगर चेहरे नहीं पहचाने जा सकते। तब स्पॉटलाइट, कभी यहाँ, कभी वहाँ, दो-दो, चार-चार के गुच्छों में अलग-अलग टोलियों पर पड़ती और इच्छित समय तक ठहरी रहती है। शेष मंच पड़े उसी अर्ध-अन्धकार में खोया रहता है।

मतलब ही होता है, इतना भी नहीं जानते ?

ानी : आपका तजरबा मेरे पास कहाँ, चंदर साहब !

चंदर : जले पर नमक मत छिड़को नरिंदर, सोमा को बग़ल में दबाये फिरते हो ...

ानी : आपकी श्वेता कहाँ गयी ?

दर : सब तुम्हारी तरह क़िस्मत के धनी नहीं होते, नरिंदर ... मैं तो खोंचिये में अपना दिल लिये कूँजड़ों की तरह गली-गली हाँक लगाता फिरा मगर कोई गाहक नहीं मिला । लाचार, इस लालपरी से आशनाई करनी पड़ी, मगर अब तो ये भी बदज़ात धोखा देने लगी है । घड़ों पी जाइए, नशे का नाम नहीं ... ये ख़ाली गिलास लिये क्यों खड़े हो ? (पठानी के हाथ से गिलास लेकर बारटेंडर की तरफ़ बढ़ाता है)

ना : कितना ख़ूबसूरत शेर है ग़ालिब का, लगता है बिलकुल तुम्ही पर कहा है चंदर

मय से ग़रज़ निशात है किस रूसियाह को
इक गूना बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए

(ख़न्ना मज़ा ले-लेकर दूसरे मिसरे को थोड़ी देर गुनगुनाता रहता है, उसी तरह जैसे अच्छी शराब को धीरे-धीरे ज़बान पर फेरकर उसका मज़ा लिया जाता है । और हर बार जब खन्ना उस मिसरे को पढ़ता है तब चंदर ऐसी चेष्टाएँ करता है जैसे किसी ने उसको चाकू मार दिया । कभी 'हाय ज़ालिम मार डाला !' और कभी इसी तरह की दूसरी कोई सदा मुँह से निकलती है, पैर लड़खड़ाते हैं, आँखें हवा में तैरने लगती हैं, हाथ सीने पर पहुँच जाता है, होंठ थरथराते हैं, चेहरे

चदर : छोड़ो भी ... किसी को नाम तक याद नहीं उसका ... कबाड़ी आदमी था ... पूछो, देसी व्हिस्की भी कोई पीने की चीज़ है। जाने कहाँ का जंगली लाकर बिठा दिया था तुम लोगों ने ...

अम्मा : छोड़ो भी, चदर, अब क्या ज़िक्र उस ग़रीब का ... साल भर में ही जहन्नुम रसीद हो गया ...

चदर : पठानी अब हो गया चार-छ बरस को ... है कहाँ मरदूद ?

अम्मा : यहीं कहीं होगा ... आयेगा यहीं ... देखता हूँ ...

मिलाम फिर अच्छी तरह भर दो ... आज ठेले पर माडवर पर पहुँचाना पड़ेगा ..

चंदर : उसके पहले यारो अपने इन्हीं कंधों पर लादकर मैं तुम्हें सरपट पहुँचा दूँ ... मला किस साले को चढ़ता है ...

खन्ना : पैर तो लड़खड़ाने लगे ...

चंदर : (आगे बढ़कर एक हाथ खन्ना की कमर में डालकर झटका देता है और दोनों पास ही उस मद्धमी-ताल पर पहुँच जाते हैं। स्टॉप।) आओ एक नाच हो जाय ...

खन्ना : (कमर से हाथ अलग करते हुए) छोड़ो यार, ये क्या करते हो ... सारा ज़माना देख रहा है ...

चंदर : तुम तो यार, ऐसा तड़पते हो कि मैं मछलियाँ भी मात है।

खन्ना : इतना ही जी कर रहा है तो लोला के साथ क्यों नहीं नाचते ? अच्छी जोड़ी बैठेगी ...

चंदर : जोड़ी तो अच्छी बैठती है प्यारे, मगर नाच के लिए नहीं ... जो हो, अपना यह नरिंदर आदमी दिलदार है ... स्टॉक तो जो खोलकर गिनायी हो, ये नाच भी इसी का प्रपोज़ल था ... कहने लगा, लोला तो होगी ही होगी ... सेलिब्रेट करना है तो ढंग से करो ... कैसे चुप-चुप से खड़े हो नरिंदर, बात क्या है ? सोमा की याद आ रही है ?

पहानी : (अचकचाकर) नहीं नहीं, कुछ तो नहीं ...

चंदर : (फ़िल्मी गाने की कड़ी गुनगुनाता है) चुप-चुप खड़े हो, जरूर कोई बात है ...

का रंग उड़ जाता है — कि जैसे हर बार जब वह मिसरा पढ़ा जाता है तो वह चाकू उसके सीने में और भी गहरे, और भी गहरे, पैवस्त होता जा रहा हो— यहाँ तक कि वह ज़मीन पर ढेर हो जाता है। उसके गिरते ही खन्ना और पडानी ज़ोर-शोर से ताली बजाते हैं।)

पडानी : ब्रावो ! ब्रावो ! आपने तो कमाल कर दिया चंदर साहब ...

खन्ना : बिलकुल नक्शा खींचकर रख दिया साले ने ! बखा ग़ालिब की रूह भी फड़क उट्ठी होगी ...

चंदर : क्यों शर्मिन्दा करते हो यार ! (लजाने का अभिनय करता है)

खन्ना : हिजड़ों से शायद अच्छी सोहबत रही है तुम्हारी !

चंदर : (आगे बढ़कर खन्ना के गले में हाथ डालते हुए) और नहीं तो क्या !

(पडानी हँस पड़ता है, खन्ना खिसिया जाता है और एक फीकी-सी मुस्कराहट के साथ आगे बढ़कर चंदर को एक धौल जमाता है जिससे चंदर के गिलास की शराब छलक जाती है।)

बोलने लगे ... होटेल फिलिपीनो का लेटेस्ट ऑफ़र उसके लिए चार हज़ार का है ...

चंदर : चार हज़ार कुछ भी नहीं उसके लिए, मगर वह उसके नाच की नहीं उसके जिस्म की कीमत है ... आओ एक जाम लोला की सेहत का पियें और फिर उधर चलें, मेरे दोस्त को अब चैन नहीं ...

(तीनों अपने-अपने गिलास काउंटर पर रख देते हैं। बारटेंडर उन्हें भर देता है। सब अपने गिलास उठा लेते हैं। चंदर एक कदम आगे बढ़कर बहुत बाकायदा और पूरी संजीदगी के साथ कहता है, 'लोला, हुस्न की मलिका।' फिर, जैसे टोस्ट किया जाता है, तीनों एक-दूसरे से अपने गिलास टकराते हैं। चंदर कहता है, 'बॉटम्स अप' और फिर तीनों गिलास मुँह से लगाये-लगाये एक ही बार में उसे खाली करके उलट देते हैं। फिर सब गिलास काउंटर पर पहुँच जाते हैं और चंदर सम्रा को कमर में हाथ डालकर कहता है — 'आओ, जानेमन !' फिर तीनों नाच की तरफ चल देते हैं, और जहाँ काल्पनिक लोग काल्पनिक सोफ़ों पर बैठे हैं उनसे जरा हटकर एक किनारे को खड़े हो जाते हैं। अब रोशनी मंच के इस हिस्से पर है और बार-काउंटर पर अँधेरा है, जहाँ इस बीच एक दूसरी टोली घूमती हुई जाकर खड़ी हो गयी है।)

पठानी : तो आप कहना चाहते हैं, चंदर साहब, कि यह नाच कोई नाच नहीं है और इतने लोग जो टकटकी बाँधे उसको देख रहे हैं ...

चंदर : नाच को नहीं, लोला को ...

चंदर : छोड़ो भी ... किसी को नाम तक याद नहीं उसका ... कबाड़ी आदमी था ... पूछो, देसी व्हिस्की भी कोई पीने की चीज़ है ! जाने कहाँ का जंगली लाकर बिठा दिया था तुम लोगों ने ...

सन्ना : छोड़ो भी, चंदर, अब क्या ज़िकर उस ग़रीब का... साल भर में ही जहन्नुम रसीद हो गया ...

चंदर : चड्डानी अब हो गया चार-छ बरस को ... है कहाँ मरदूद ?

सन्ना : यहीं कहीं होगा ... आयेगा कहाँ ... देखता हूँ ... (जाता है)

चंदर : (सन्ना के जाते-जाते) कहना चंदर ने ... दो बूँद हमारे साथ भी पी ले ··· (गिलास बारटेंडर की तरफ बढ़ाता है) बड़ी प्यारी शाम गुज़री आज ... (सन्ना चड्डानी को साथ लेकर आता है)

चंदर : (चड्डानी से) आज तुमने जी खुश कर दिया प्यारे ...

चड्डानी : अरे, अभी इतना होश बाकी है ! मैंने तो समझा था...

चंदर . ... मेज़ के नीचे लुढ़का पड़ा हूँगा ... वाह ! मगर उसके लिए कुछ और ही शराब चाहिए, नरिंदर... (शिकायत के स्वर में) आज इस पार्टी को स्टैग कर देने की तुम्हें अच्छी सूझी !

चड्डानी : पिछली बार ऐसी कई शिकायतें आयी थीं कि लोग पीकर बहुत बहक जाते हैं ...

चंदर : औरत होगी तो मर्द बहकेगा ही ... उसमें ऐसी क्या नयी बात है ?

चड्डानी : और उनको अगर शिकायत हो ?

चंदर : औरतों की शिकायत ! औरत ना करती है तब उसका

सभा : इतना ही जी आ गया है इस हसीना पर तो उसे अपना सेक्रेटरी क्यों नहीं बना लेते ? इतना बड़ा इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट का धंधा है तुम्हारा रोज ही बीसों काम निकलते रहते हैं ... जिधर, जिस दफ़्तर में, जिस मिनिस्ट्री में निकल जायेगी, लोग पैरों में बिछे दिखायी देंगे ... चुटकियों बजाते काम होगा .. कौन है जो टहर सके उसके आगे ...

चंदर : ठीक कहते हो । मैंने भी सोचा था । मगर फिर हिम्मत नहीं पड़ी । इतना महँगा सेक्रेटरी ..

सभा : महँगा ? जितना दोगे उसका हज़ार गुना कमाकर देगी ।

चंदर : लाहम मयाई भी तो होनी चाहिए देने की ?

सभा : अभी तर्क करते हो कि नहीं ? मिनिस्ट्री में एक-एक कागज निकलवाने में हज़ारों का वारा-न्यारा हो जाता है तब रहीम की एक मुस्कान पर काम होगा, और सोना की एक कटीली चितवन पर ।

चंदर : तो फिर तुम्हीं क्यों नहीं रख लेते ?

सभा : मेरे कारखाने में क्या मजदूरों से गिट छोड़ेगी ? सरकारी दफ़्तरों में अपना उतना काम ही नहीं पड़ता । ... के लिए मोना आइडियल है । इतना इतने काम का, और कुछ मिलाकर इतना ... सेक्रेटरी तुम्हें दूसरा नहीं मिलता . . , और दुनि- याओं पर ... रहेगी सो अलग . . देखते- दुनिया ... कर लोगे ...

... किसी और को दिखाना, प्यारे .. इतना ... सेक्रेटरी रखना और घर में ढेर पालना

माया : आज भी कलदार का कैसा है, मौ ... मां ...

शहर : इसर का सुडौल जिस्म क्या है इस औरत में ... बाँहों भी जिन पर नाज करें ... सभी आगे के होश उड़ जाते हैं देखकर ...

माया : (अलसाती हुई सोफ़ा पर अंग मटकाते-मटकाते) ऊँह यो नाहक अर्थशास्त्र क्या है ... कहूँ यहाँ से तोड़ दो ...

शहर : (कुटिल-सी मुस्कराहट के साथ) हाँ, कहो इसी से तोड़ दो ! उसी के तो पैर मेरे हैं ...

माया : अच्छा लगता साथ रहो है, क्या नहीं तुम्हें कहो ...

शहर : हिश्ट, यह भी कोई बात है ! मलमर्दन की हटती हुई एक खूबसूरत छोकरी अपने जिस्म की नुमाइश कर रही है और देखनेवाले सब उसे अपनी आँखों की दुनिया में अलग-अलग अपनी जेब में लिये बैठे हैं ... देखो न, सब कैसे निढाल पड़े हैं, किसी को तन-बदन का होश नहीं ... किसी का मुँह खुला है, किसी

सन्ना : तुम्हें तो बस एक बात सूझती है ...

चंदर : नहीं-नहीं, शर्माने की इसमें क्या बात है ! .. फर्माइश करो, मैं कल उसे तुम्हारे घर पर हाजिर करता हूँ ...

सन्ना : घर पर ! खोपड़ी यों ही काफी गंजी हो चली है, यार ...

चंदर : धत्तेरे की, मैं हमेशा भूल जाता हूँ कि तुम्हारे यहाँ वो आसानियाँ नहीं जो एक रँडुए के घर में होती हैं ... मेरी बीवी बहुत नेक थी ... तो मेरे घर सही ...

सन्ना : (बनावटी गुस्सा दिखलाते हुए) तुम यहाँ से टलो तो किसी तरह, फिर सब देखी जायेगी ... सारा दिमाग़ चाट डाला ! (चंदर हो-हो करके हँस पड़ता है और सन्ना को धीरे से आँख मारकर 'बेस्ट ऑफ़ लक ! बेस्ट ऑफ़ लक !' कहते हुए पठानी के साथ बार-काउंटर की तरफ बढ़ते हुए रास्ते में, अपने बायें को, शीशे के उस मछली-ताल पर ज़रा देर को ठहरता है, लगभग एक मिनट । स्पॉट । चंदर कहता है, 'हाय ऑफिसर, ये रंग-बिरंगी सोनमछलियाँ भी क्या चीज़ हैं ! कैसी मगन अपनी इस छोटी-सी दुनिया में !' पठानी कुछ नहीं कहता, बस उन मछलियों का खेल देखता खड़ा रहता है, और फिर दोनों आगे बढ़ जाते हैं, जहाँ अधेड़ सक्सेना साहब, जिनके कनपटी के बाल सफ़ेद हो चुके हैं, चार लोगों का एक गोल बनाये उन्हें कोई बेहूदा दिलचस्प किस्सा सुना रहे हैं जिसे सब बच्चों की तरह कान उठाये सुन रहे हैं । सक्सेना

एक ही बात है ...

रामा : तुम्हें किसका डर, रँडुए ठहरे ... डरें तो हम लोग जिनके घरों में बीवियाँ हैं ...

धवानी : छोड़िए भी ... आप लोग तो यहाँ भी बिज़नेस का चर्चा ले बैठे। मैं तो शाम को दफ्तर से उठता हूँ तो बिज़नेस को वहीं फाइल में बद कर आता हूँ ...

चदर : तुम्हारी क्या बात है, नरिंदर। बाप अभी ज़िंदा है, घर में अकूत पैसा है, अकेले बेटे हो, तुम जितना करते हो वही बहुत है ...

धवानी : (कुछ खिसियाकर) ये तो उसूल की बात है, चदर साहब ...

चदर : आप अभी बच्चे हैं, साहबज़ादे ... अपने बापजान से पूछिएगा ... उसूल-फुसूल कहीं कुछ नहीं ... चौबीसों घंटे की चक्की है ... इस लालपरी से आशनाई न हो तो रात की नींद भी हराम हो जाये ... बड़ी भयानक चीज़ है बिज़नेस ... यहाँ कोई किसी का सगा नहीं ... एक हड्डी के लिए दस कुत्ते लड़ते हैं ... ज़िंदा रहने के लिए बड़ी-बड़ी सबील करनी पड़ती है, बरखुरदार! बाप की आँख मुँदेगी तब समझोगे ..

खन्ना : रहम करो, चदर ... देखो कैसा मुँह निकल

सन्ना : तुम्हें तो बस एक बात सूझती है ...

चंदर : नहीं-नहीं, ज़माने की इसमें क्या बात है । .. फर्माइश करो, मैं कल उसे तुम्हारे घर पर हाजिर करता हूँ ...

सन्ना : घर पर ! खोपड़ी यों ही काफ़ी गंजी हो चली है, यार ...

चंदर . धत्तेरे की, मैं हमेशा भूल जाता हूँ कि तुम्हारे यहाँ वो आसानियाँ नहीं जो एक रँडुए के घर में होती हैं ... मेरी बीवी बहुत नेक थी ... तो मेरे घर सही ...

सन्ना . [illegible]

साहब के पास रेल के क़िस्सों का एक पूरा ख़ज़ाना है। छीजना कैसा, उसमें हमेशा नया कुछ जुड़ता रहता है, जिससे चलते सफ़रीना साहब किसी भी महफ़िल की जान बन जाते हैं, एक ऐसा जुआ जो किसी को अपनी तरफ़ खींचे बग़ैर नहीं छोड़ता। बड़ों और चंदर भी अपने मिज़ाज भरसक उसी शौक़ में शामिल हो जाते हैं। रोशनी का फोकस अब इसी हिस्से पर

जब तक कि उन तीन लोगों में एक वो भी नहीं थे !

(इस पर हल्का-सा एक कहकहा पड़ता है, हँसें-कि-न हँसें कुछ इस तरह का।)

चंदर : (मदानी से) चलो यार, जरा देखें अपना वो लल्ला कहाँ है ... आया नहीं ... लगा होगा अपनी उसी जुगत में ... (दोनों चल पड़ते हैं। दो-चार कदम आगे जाकर) मुझे तो इस आदमी की शकल से चिढ़ हो गयी है ... आज तो फिर भी सुनता रहा खामोशी से, देखूँ बात क्या है ... मगर इसमें शक नहीं कमबख्त किस्सा कहना जानता है ... कुछ तो यह भी बात है, मँज गया है कहते-कहते ... हर पार्टी में इसका यही काम है ... तुमने भी देखा होगा ... पिटारा खोलकर बैठ जाता है मदारी की तरह और भीड़ बटोर लेता है अपने आसपास ... कि जैसे कोई बुवक लगा हो साले के . . जाने कहाँ-कहाँ के किस्से लाकर सुनाता है, खूब नमक-मिर्च लगाकर ... कुछ तो करना ही ठहरा जब अपने किये-धरे अब कुछ बनता नहीं ..

मदानी : बुड्ढा बकता है, चंदर साहब ...

चंदर : मुझे तो भैया अपनी ब्लू फिल्मस पसंद हैं ... नो बीटिंग अबाउट द बुश .. बहुत दिन हो गये, तुमने कुछ दिखाया नहीं ?

मदानी : इधर कुछ ऐसा ही ड्राई स्पैल गया ... गुजराल कहता था जल्दी ही नया कनसाइनमेंट आनेवाला है ... अच्छा तो कहिए तो आपके घर पर रख लिया जाय ?

बचा नहीं सकता, तेरे वो दोनों सगेरे भाई भी नहीं जिनका तुझे इतना गुमान है! अब तो पाँसा फिर गया। होगा, जो होना होगा। अब भी मान जा हरामजादी, नहीं खोदकर गाड़ दूँगा, रंगी को तू नहीं जानती! तेरे जैसी न जाने कितनी को पार कर चुका हूँ।' मगर उस छोकरी के सिर पर तो भूत सवार था, चिल्लाकर बोली, 'बोटी-बोटी काटकर फेंक देंगे दोनों, हो किस होश में!' 'देख लेंगे, कौन किसकी बोटी-बोटी ...' कहते हुए रंगी ने उल्टे हाथ का ऐसा तगड़ा झापड़ रसीद किया कि मुँह से खून फेंक दिया लड़की ने और गरजकर बोला— बुला न, अब बुलाती क्यों नहीं अपने खसमों

अंक २

(अगले दिन। बागियों के अड्डे पर। शहर की ही एक बस्ती में। मकान का सामना एक पुरानी-सी गली में है और पिछवाड़े एक लंबा-चौड़ा अहाता है जिसमें पता नहीं कैसा-कैसा काठ-कबाड़ भरा है। यहीं पर थोड़ी-सी जगह टट्टर से घेर-घारकर बागियों ने अपना अड्डा बना लिया है। अहाता आगे जाकर एक उजाड़ मैदान से मिल जाता है, जिसके आगे बस एक पुराना नाला है। मैदान में दादा आदम के वक्त के बहुत-से आम के पेड़ हैं, जिनमें अब फल नहीं आते। कभी यह किसी रईस की अमराई रही होगी।

शाम का धुंधलका है। एक लालटेन जल रही है। मद्धिम सी रोशनी है, जो पूरे दृश्य में मद्धिम ही रहेगी जिसमें कुछ भी साफ-साफ नहीं दिखायी देता और धुंधली सी आकृतियाँ डोलती नजर आती हैं, जैसे पहले दृश्य में, प्रकाश-वृत्त से अलग शेष मंच पर। किशोर, चित्रा और पठानी। किशोर के हाथ में एक देसी पिस्तौल है, चित्रा के हाथ में छः गोलियोंवाला कोल्ट रिवॉल्वर। दोनों अपने हथियारों की सफाई कर रहे हैं। दोनों आधी बाँह की कमीज़ और मटमैली-सा जीन्स पहने हैं। पास ही दस-पन्द्रह हाथ की दूरी पर पठानी एक पत्थर पर बैठा है। उसके हाथ में हुप-

कोई हिलना भी मत वर्ना ...

(टॉर्च बुझ जाती है और उसी अँधेरे में बाग़ियों की यह टोली पठानों को अपने साथ लेकर बाहर हो जाती है । पर्दा गिरता है ।)

C002
39112066

डर से कि उसकी चुप्पी सरदार को और भी नाराज़ न कर दे, वह डरते-डरते सर हिलाकर हामी भरता है, और किशोर दाहिने हाथ से जोर का एक झांपड़ उसके गाल पर रसीद करता है, कि जैसे इसी सर हिलाने का इतज़ार करता रहा हो) साला सर हिलाता है ! (नकल करता है) जाने क्या समझता है अपने को ! गद्दा-तोशक, पलग-मसहरी, सबका इतज़ाम होना चाहिए, जमाईबाबू अपनी ससुराल आये हैं ! बोटी-बोटी काटकर फेंक दूँगा साले, तू है किस होश मे ! ... (पिस्तौल कनपटी से लगाकर) बस एक गोली का खर्च है ! अब तुम जा नही सकते यहाँ से, जब तक तुम्हारे बाप के उस एक करोड़ मे से, जो उसने हमारा पेट काटकर ही जमा किया है, एक लाख यहाँ नहो आ जाता ... और वो भी जल्द, बहुत जल्द ... हमारे बीच सीधी लड़ाई है ... तुम रहोगे या हम रहेंगे ... हाँ, खून बहेगा ... बहुत खून बहेगा ...लेकिन सिर्फ हमारा नही, अब हम मारकर मरेंगे ... गोली का जवाब गोली से दिया जायगा, क्योकि दूसरी कोई भाषा तुम्हारी समझ मे नही आती ... (आवेश मे टहलने लगता है) सड़ गया है .. सब कुछ सड़ गया है ... ऊपर से नीचे तक . . उस कोढ़ से जो तुमने फैलाया है . पैसेवालो का कोढ़ ... मरहम लगाने से अब कुछ नही हो सकता ... बीत गया ... मरहम का वक्त बीत गया ...

(दो बार पीताम्बर को पुकारता है । पीताम्बर दौड़कर अन्दर आता है ।)

कड़ी है। यह अपनी उसी रातवाली पोशाक में है — टेरेलीन का सूट, भड़कीली टाई, वैसी ही भड़कीली बेल्ट, पतली नोकवाले जूते।)

किशोर : (भवानी के पास आकर, कुटिल मुस्कराहट) कहिए छोटे सरकार, कैसा लगा हमारा ये अंधेरा बियाबान? ... पहले भला क्यों आये होंगे कभी ... शायद कोई पिकनिक या (पल भर रुककर, अगली बात की व्यंजना को और स्पष्ट करने के लिए) चिड़ियों का शिकार! ... फ़ाख्ते, बटेरें, मुर्गाबियाँ ... बहुत मिलती हैं इधर ... एक से एक बढ़कर ... बड़ा मीठा गोश्त होता है उनका ... बाज़ार की चिड़ियों में वह मज़ा कहाँ ... आपको तो पता होगा सब ... (भवानी सकपकाया-सा बैठा रहता है, कुछ कह नहीं पाता। किशोर का भाव यकायक गुस्से का हो जाता है। बुलंद और तीखी आवाज़ में डपटकर) खड़े हो! इतनी भी तमीज़ नहीं कि अपने से बड़ों के सामने ... (भवानी हड़बड़ाकर खिलौने के बबुओं की तरह उठ खड़ा होता है। दीन मुस्कराहट, क्षमा सी माँगते हुए।) फूल सा चेहरा एक ही दिन में कुम्हला गया! (कमर पर ऊपर-नीचे हाथ फेरते हुए) पत्थर चुभता होगा ... मखमलियों की दुनिया हमारे पास कहाँ! और फिर ये ज़ालिम मच्छर ... कुछ ख़याल नहीं करते कौन कौन है ... (बाँहों पर हाथ फेरते हुए ...

मामा

(फ्लैशबैक । किशोर और विभा मंच पर पीछे की तरफ़ जाते हैं । मामा, चौदह-पन्द्रह वर्षीया विभा और पन्द्रह-वर्षीय किशोर का प्रवेश । स्टेज पर हम तीनों पर हैं । मामा अठारह-उन्नीस साल का है वेशभूषा, चाल-ढाल सब शहरी गुंडों जैसी । मन में बहुत अकड़ीला या रंगीन स्वप्न भी देखा है । अभी नशे में है पर ऐसा नहीं कि उसके पैर लड़खड़ा रहे हों या कि उसे अपने पर वश न हो । किशोर और विभा बढ़े जाते जा रहे हैं कि मामा आता है और विभा को इससे धक्का मारते हुए आगे बढ़ जाता है ।)

किशोर : (तैश में) क्यों जी अंधे हो ?

मामा : , ललकार, भारी आवाज में । ज़बान संभालकर बोलो वर्ना बुरा होगा । जानते नहीं मैं कौन हूँ ?

किशोर : होगे जो होगे, तुम्हारी गुंडई यहाँ नहीं चलेगी . .

मामा : साले, तुझे पता नहीं शायद, मैं इस बस्ती का राजा हूँ । (आगे बढ़कर 'आओ मेरी जान' कहते हुए सहमी-सहमी सी खड़ी विभा का हाथ पकड़ लेता है । विभा उसका हाथ झटक देती है और किशोर की आड़ लेकर खड़ी हो जाती है । किशोर 'तेरे राजा की ऐसी तैसी' कहते हुए मामा से जा भिड़ता है । मामा उसे झटक-कर अलग कर देता है और अपने पतलून की जेब से रामपुरी चाकू निकालता है । बटन दबाते ही चाकू झटके से खुल जाता है ।)

मामा : बड़ी बहादुरी दिखा रहा है अपनी छोकरिया के आगे, अब आ साले, अभी तेरा कीमा बनाता हूँ ! आजी

...साहब को बाहर ले जाकर पेड़ से बाँध दो ... ख़ूब कड़ी नज़र रखना ..., जाओ ... (मडानी से) भगवान तुम्हारे बाप को सुबुद्धि दे, अगर उसे अपने बेटे की जान प्यारी है, वर्ना ... वर्ना ... (गोली मार देने का इशारा करता है। पीताम्बर मडानी को लेकर बाहर जाता है। चित्रा अपनी जगह से उठकर, जहाँ वह अब तक अपने रिवॉल्वर की सफ़ाई करती बैठी थी, किशोर के पास आती है।)

चित्रा : याद है, किशोर, अपनी गली से एक गली आगे, चूननाथ मल्लिक स्ट्रीट में, एक गुंडा रहता था, गागा ?

किशोर : याद है चित्रा, ख़ूब याद है ... ये टूटी हुई नाक तभी की तो है।

चित्रा : ख़ैर मनाओ कि इतने पर ही बला टल गयी, वर्ना उस रोज़ गागा ने तो मार ही डाला था तुम्हें ... काले देव जैसा आदमी, हाथ भर ऊँचा तुमसे, और तुम थे कि आव देखा न ताव, जा भिड़े उस भैंसासुर से ... फिर जो कुटी हुई है तुम्हारी, मैं तो आज भी सोचकर दहल जाती हूँ ...

किशोर : मगर मैंने भी एक बार दाँत गड़ाया तो फिर छोड़ा नहीं ... जब तक होश रहा ...

चित्रा : इसमें क्या शक, आदमी चीमड़ हो। इतना पिटे मगर उफ़ न की ...

किशोर : (दिल्लगी का मजा लेते हुए) कह लो ... कह लो ...

चित्रा : क्या झूठ कहती हूँ ?

किशोर : दुनिया के आधे झगड़े लड़कियों को लेकर होते हैं। न तुम होतीं न गागा तुमको छेड़ता, न मैं उससे लड़ने

चित्रा : इसीलिए न कि घर जाते तो नयी माँ और चार डंडे लगाती ?

किशोर : (भीगे-भीगे स्वर में) नहीं, तुम्हारे हाथ से ट्रिगर कम थरथराता था !

चित्रा : पिस्तौल हाथ में लेकर ऐसी बातें जरा अटपटी लगती हैं ...

किशोर : नहीं, अटपटा इसमें क्या है ... मगर तुम्हें आज एकाएक गागा की याद कैसे आ गयी ?

चित्रा : कुछ नहीं ... यों ही ...

किशोर : चित्रा यों ही कभी कुछ नहीं कहती ... मैं जानता हूँ ..

चित्रा : (इस बीच अपने को तैयार करके, गम्भीरता से) अभी जब तुम उस आदमी से बात कर रहे थे और तुम्हारा भरपूर हाथ उसके गाल पर बैठा तो मुझे लगा कि मैं तुम्हें नहीं गागा को देख रही हूँ ...

किशोर : (उपटते हुए) मतलब ?

चित्रा : (अपनी बात की रौ में) गागा, जिसकी आँखों में जहर था ... जिसके होठों पर सदा एक तिरछी मुस्कराहट रहती थी ... जिसे मजा आता था लोगों को सताने में ...

किशोर : (आवाज ऊँची करके) चित्रा !

चित्रा : (उसी रौ में) ... जो अपने उस कालिखपुते चेहरे और गँजेड़ी की लाल-लाल आँखों से सब पर अपना आतंक जमा देना चाहता था ... जिसके पास अपने उस आतंक को छोड़कर दूसरी कोई ताक़त न थी ...

किशोर : दूसरी कोई ताक़त और होती भी क्या है ...

[illegible] है। [illegible] नहीं [illegible] लिए [illegible] फिर [illegible] है। [illegible] बहू [illegible] के लिए फिर [illegible] में हुए [illegible] है और [illegible] खिड़की को [illegible] में [illegible] अभी है। अब [illegible] देख रहे हैं। [illegible] किशोर दूर जाकर गिरता है और फिर उठने को होता है कि निशा कहती है, 'दूरों के मुँह लगने से कोई फायदा नहीं किशोर ...' लाला बड़बड़ाता चला जाता है, 'आज छोड़ दिया बच्चू, फिर किसी दिन देखूँगा। संभलकर रहना!' लाला के उचककर सुनने

पीताम्बर : आश्विन बाबू आये हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।

किशोर : आश्विन ? मुझसे ?

पीताम्बर : हाँ। उनके साथ कुण्डल भी है। कहते हैं, कुछ जरूरी बात करनी है।

(किशोर अपनी पिस्तौल खोलकर उसमें गोलियाँ डालता है। फिर चित्रा की ओर देखकर, आँख से इशारा करता है। चित्रा भी अपना रिवॉल्वर भर लेती है।)

चित्रा : (हल्की सी मुस्कराहट के साथ) क्या पिस्तौलों से बात होगी ?

किशोर : इन लोगों का कुछ भरोसा नहीं चित्रा। (पीताम्बर से) जाओ, भेज दो, और देखो पास में ही रहना। (पीताम्बर चला जाता है) बेमतलब जोखिम उठाना कोई समझदारी नहीं। (आश्विन और कुण्डल का प्रवेश। आश्विन के कोट के दाहिने जेब से और कुण्डल के चुस्त पतलून के बायें जेब से उनकी पिस्तौलों के हत्थे झाँक रहे हैं) बड़ी तैयारी से आये हैं आप लोग ... कहिए कैसे आना हुआ ?

आश्विन : किशोर बाबू, हम झगड़ा नहीं करना चाहते पर आप अपने लड़कों को मना कर दीजिए ...

किशोर : क्यों, क्या बात है ?

आश्विन : वो लोग चंदा लेने हमारे इलाके में पहुँचते हैं। हमको रिपोर्ट मिली है।

किशोर : रिपोर्ट आपको ठीक ही मिली होगी पर इलाके कहीं बँटे तो हैं नहीं ...

आश्विन : कैसे नहीं बँटे हैं ... जहाँ जिसकी बेशी जोर है वही उसका इलाका ...

चित्रा : मैं जानती थी एक दिन तुम्हारे मुँह से यही गागा की वाणी सुनने को मिलेगी !

किशोर : (अनसुना करके) ... दुनिया इसी आतंक से चलती है चित्रा .. राजा का आतंक, धर्म का आतंक, धन-दौलत का आतंक ... उसके बिना कहीं गति नहीं ... सर हम उसी को झुकाते हैं जिससे हम आतंकित हैं... केंचुए से कोई नहीं डरता, साँप से सब डरते हैं, क्योंकि उसके पास जहर है ...

चित्रा : बड़ा मज़ा आ रहा है, किशोर, तुम्हारे मुँह से ऐसी सब बातें सुनकर ... मगर मैं फिर कहूँगी, यह तुम्हारी नहीं गागा की आवाज है ...

किशोर : तुम भूलती हो चित्रा, यह न मेरी आवाज है न गागा की, यह वक्त की आवाज है, अपनी इस शताब्दी की ... धरती फिर एक बार करवट ले रही है... मुर्दा सदियों का बोझ कब तक कोई ढोयेगा ...

चित्रा : तो लगा दो आग एक सिरे से ... सब कुछ भसम हो जाय ...

यहाँ तो यही पता नहीं चलता कि अपना दुश्मन कौन है, किससे लड़ाई है अपनी ...

किशोर : जो हमारे साथ नहीं है वो हमारा दुश्मन है ...

चित्रा : वाह, कैसी अच्छी परिभाषा है !

किशोर : परिभाषाएँ जिसे गढ़ना हो, गढ़े ... असल बात अपनी ताकत जमाने की है और ताकत बंदूक की नली में से निकलती है ...

चित्रा : (रिवॉल्वर से गोलियाँ निकालते हुए) मौत तो निकलती है, ताकत की बात मैं नहीं जानती ... और, हाँ, धुआँ ...

किशोर : तुम्हारी तो कोई बात ही समझ में नहीं आती चित्रा। (पिस्तौल से गोलियाँ निकाल लेता है।)

चित्रा : कितने रुपये का मामला है जिसके लिए कल खून गिरेगा ?

किशोर : रुपया कितना है, महीने का सौ भी नहीं, लेकिन अब तो बात आन पर आ गयी है ...

चित्रा : आग लगाओ ऐसी आन को जिसमें बेकार अपनों ही का खून गिरना है ..

किशोर : पीताम्बर ! पीताम्बर ! (पीताम्बर अन्दर आता है।) सरताज, गोविन्द, और भी जो दो-एक लोग आसपास हों उन्हें भी बुला लो। (पीताम्बर चला जाता है।) अभी तुम्हें हाथ के हाथ जवाब मिला जाता है चित्रा। (पीताम्बर दो-तीन और साथियों को लेकर आता है।) दोस्तो, तुम्हारी चित्रादी का कहना है कि हम लोगों को आश्विन-कुंडल से झगड़ा नहीं करना चाहिए ...

(इस बातचीत के दौरान चित्रा खिसककर एक बगल को खड़ी हो गयी है जहाँ से वह इन दोनों को अच्छी तरह कवर कर सकती है। कुण्डल दाहिनी आँख की ओर से चित्रा पर नज़र रखे है।)

किशोर : (हल्की सी मुस्कराहट के साथ) ठीक बात, पर यह कैसे जाना आपने कि वहाँ पर आपका जोर ज्यादा है?

आश्विन : मतलब आप हमको चैलेंज करते हैं ?

किशोर : अब आप जो समझें पर मैं तो एक बात पूछ रहा था आपसे ...

आश्विन : मैं समझ गया, आप लोग सीधे से नहीं मानेंगे ...

किशोर : सीधे से कौन किसकी बात मानता है आश्विन बाबू !

आश्विन : मैं झगड़ा बचाने ही आया था किशोर बाबू, लेकिन अगर आपकी यही मर्जी है तो यही सही ...

किशोर : (इसका जवाब न देकर कुण्डल के पिस्तौल की ओर इशारा करते हुए) इसका शायद बायाँ हाथ चलता है ...

आश्विन : तो फिर ठीक है, कल तीसरे पहर, ठीक चार बजे, उसी मैदान में ... (किशोर सर हिलाकर हामी भरता है, आश्विन और कुण्डल चले जाते हैं।)

चित्रा : ये अनाप-शनाप मारकाट ...

किशोर : किसे पसन्द है चित्रा, लेकिन और रास्ता भी क्या है ?

चित्रा : कोई दिन नहीं जाता कि दस-पाँच लोगों का खून ...

किशोर : (बात काटकर, थोड़ा चिढ़कर) खून गिरने से तुम क्यों इतना घबराती हो चित्रा, खून तो गिरता ही है ऐसे सब कामों में ...

चित्रा : मगर बेमतलब नहीं। उसका भी एक ढंग होता है।

यहाँ तो यही पता नहीं चलता कि अपना दुश्मन कौन है, किससे लड़ाई है अपनी ...

किशोर : जो हमारे साथ नहीं है वो हमारा दुश्मन है ...

चित्रा : वाह, कैसी अच्छी परिभाषा है !

किशोर : परिभाषाएँ जिसे गढ़ना हो, गढ़े ... असल बात अपनी ताकत जमाने की है और ताकत बंदूक की नली में से निकलती है ...

चित्रा : (रिवॉल्वर से गोलियाँ निकालते हुए) मौत तो निकलती है, ताकत की बात मैं नहीं जानती ... और, हाँ, धुआँ ...

किशोर : तुम्हारी तो कोई बात ही समझ में नहीं आती चित्रा। (पिस्तौल से गोलियाँ निकाल लेता है।)

चित्रा : कितने रुपये का मामला है जिसके लिए कल खून गिरेगा ?

किशोर : रुपया कितना है, महीने का सौ भी नहीं, लेकिन अब तो बात आन पर आ गयी है ...

चित्रा : आग लगाओ ऐसी आन को जिसमें बेकार अपनों ही का खून गिरता है ...

किशोर : पीताम्बर ! पीताम्बर ! (पीताम्बर अन्दर आता है।) सरताज, गोविन्द, और भी जो दो-एक लोग आसपास हैं उन्हें भी बुला लो। (पीताम्बर चला जाता है।) अभी तुम्हें हाथ के हाथ जवाब मिला जाता है चित्रा। (पीताम्बर दो-तीन और साथियों को लेकर आता है।) दोस्तो, तुम्हारी चित्रादी का कहना है कि हम लोगों को आदित्य-कुहल से झगड़ा नहीं करना चाहिए ...

(इस बातचीत के दौरान चित्रा निकलकर एक तरफ को खड़ी हो गयी है जहाँ से वह इन दोनों को अच्छी तरह नजर कर सकती है। कुण्डल दाहिनी आँख की कोर से चित्रा पर नजर रखे है।)

किशोर : (हल्की सी मुस्कराहट के साथ) ठीक बात, पर यह कैसे माना जाये कि बात पर आपका जोर कैसा है?

आदित्य : मतलब आप हमको चैलेंज करते हैं?

किशोर : अब आप जो समझें पर मैं तो एक बात पूछ रहा था आपसे ..

आदित्य : मैं समझ गया, आप लोग सीधे से नहीं मानेंगे ...

किशोर : सीधे से कौन किसकी बात मानता है आदित्य बाबू!

आदित्य : मैं झगड़ा बचाने ही आया था किशोर बाबू, लेकिन अगर आपकी यही मर्जी है तो यही सही ...

किशोर : (इसका जवाब न देकर कुण्डल के रिवॉल्वर की ओर इशारा करते हुए) इसका शायद बायाँ हाथ चलता है ...

आदित्य : तो फिर ठीक है, बस तीसरे पहर, ठीक चार बजे, उसी मैदान में .. (किशोर सर हिलाकर हामी भरता है, आदित्य और कुण्डल चले जाते हैं।)

चित्रा : मैं अनाप-शनाप मारकाट ...

किशोर : किसे पसंद है चित्रा, लेकिन और रास्ता भी क्या है?

चित्रा : कोई दिन नहीं जाता कि दस-पाँच लोगों का खून ...

किशोर : (बात काटकर, थोड़ा चिढ़कर) खून गिरने से तुम क्यों इतना घबराती हो चित्रा, खून तो गिरता ही है ऐसे सब कामों में ...

चित्रा : मगर बेसिरपैर नहीं। उसका भी एक ढंग होता है।

किशोर : (हल्की सी मुस्कराहट के
ढंग आता जानते कि यहाँ

आश्विन : मतलब आप हमको चैलेंज

किशोर : अब आप जो समझ रहे हैं।
आश्विन ...

आश्विन : मैं समझ गया, आप लोग भी

किशोर : सोचे या कौन किसकी बात ?

आश्विन : मैं झगड़ा बचाने ही आया था
अगर आपकी यही मर्जी है तो

किशोर : (इसका जवाब न देकर कुछ
इशारा करते हुए) इसका सा
है

आश्विन : तो फिर ठीक है, कल तीसरे प
उसी मैदान में ... (किशोर सर
है, आश्विन और कुण्डल चले जा

चित्रा : ये अनाप-शनाप मारकाट ...

किशोर : किसे पसंद है चित्रा, लेकिन और

चित्रा : कोई दिन नहीं जाता कि दस-पाँच

किशोर : (बात काटकर, थोड़ा चिढ़कर)
क्यों इतना घबराती हो चित्रा, सु

...जिसे पढ़ना हो, पढ़े ... असल बा ताक़त जमाने की है और ताक़त बंदूक में से निकलती है ...

चित्रा : (रिवॉल्वर से गोलियाँ निकालते हुए) मौत लती है, ताक़त की बात मैं नहीं जानती . हाँ, घुला . .

किशोर : तुम्हारी तो कोई बात ही समझ में नहीं आती (पिस्तौल से गोलियाँ निकाल लेता है ।)

चित्रा : कितने रुपये का मामला है जिसके लिए क गिरेगा ?

किशोर : रुपया कितना है, महीने का सौ भी नहीं, लेकिन बात आन पर आ गयी है ...

चित्रा : आग लगाओ ऐसी आन को जिसमें बेकार अप का खून गिरता है ...

किशोर : पीताम्बर ! पीताम्बर ! (पीताम्बर अन्दर आता सरताज, गोविन्द, और भी जो दो-एक लोग आ हों उन्हें भी बुला लो । (पीताम्बर चला जाता अभी तुम्हें हाथ के हाथ जवाब मिला जाता है (पीताम्बर दो-तीन और साथियों को लेकर है ।) दोस्तो, तुम्हारी चित्रादी का कहना है हम लोगों को आश्विन-कुडल से झगड़ा नहीं व चाहिए ...

भरताज : झगड़ा भी होकर रहेगा …

पीताम्बर : एक बार खुलकर लड़ गया तो ठीक है … यह रोज़ रोज़ की खिटपिट ठीक नहीं . .

मनोज : हम लोग इस तरह अपना मुहल्ला छोड़ने नहीं जा रहे हो चुका !

भरताज : और फिर हमारा बरसों का ज़ोर है यहाँ … यह लोग क्यों नहीं छोड़कर चले जाते ?

पीताम्बर : आखिरकार बापू का मुँह तोड़े बिना काम नहीं चलेगा। बहुत ज़्यादा दिमाग़ हो गया है उनको।

चित्रा : मगर मैं पूछती हूँ तुम्हें क्या मिलेगा इस खून-खच्चर से।

भरताज : मिलने न मिलने की बात पीछे देखी जायगी चित्रा दी … अभी उनको बता देना है कि उनकी धौंस हमारे साथ नहीं चलेगी … हमने भी अपनी माँ का दूध पिया है !

किशोर : अच्छा तो अब जाओ तुम लोग और अच्छी तरह कल की तैयारी करो। इस मोर्चे के कप्तान तुम हो, भरताज। कल सवेरे मैं तुमसे इसके बारे में बात करूँगा। (तीनों चले जाते हैं।) जवाब मिल गया ना ?

चित्रा : नहीं। जवाब तो मुझे तुमसे पाना है। इन लड़कों का क्या, जो कुछ इनके दिमाग़ में भरा गया है वही दुहरा रहे हैं।

किशोर : मगर चित्रा, मैं भी उनसे बाहर नहीं हूँ और (थोड़ा रुककर) न जाने की हिम्मत कर सकता हूँ। कल के लोग यहाँ … मेरे मुँह पर थूकेंगे, डूब मर चुल्लू भर

। : अगर हम रहें . .

ट : हम न भी रहें तो क्या, दुनिया रहेगी। आगे की चिन्ता आगे के समय को करने दो। अभी तो गहराई, ऊंचाई, [illegible], अच्छे मज़बूत हाथों में, पैरों में नहीं, कुल्हाड़ी और मैदान में, तमाम नई जगह-झाड़ियों की, जिनकी जड़ें [illegible] की तरह जाने कहाँ-कहाँ तक फैली हैं .

मा : अपने [illegible] के [illegible] में तुम मुझे नहीं बहलाकर ले जा सकते, विक्टर . तुम्हारा [illegible] है . कोई एक जंगल-झाड़ी नहीं है, ढेरों जंगल-झाड़ियाँ हैं . तुम किसकी बात कर रहे हो ?

[illegible] : वही जो सब तरफ़ राज कर रही है [illegible] जिनके काँटे सबको चुभ रहे हैं मगर कोई उफ़ भी नहीं करता

मा : तो क्या तुम अकेले ही उनको काट लोगे ?

[illegible] : आदमी, और सब भी आयेंगे, जिन्हें [illegible] की तरह अपने-अपने [illegible] में [illegible] और [illegible] जाए ..

मा : अच्छा [illegible] तो सब चुके हैं और तुम [illegible] की तरह

अपनी, चाहे पहाड़ भी टूट पड़े, कान पर जूं नहीं रेंगती ...

चित्रा : झूठ, सरासर झूठ। लड़ने-मरनेवालों की देश में कोई कमी नहीं, कमी है तो उनकी जो आगे बढ़कर बतायें किससे लड़ना है, कहाँ मरना है ... अपनी कमजोरी को गालियों से मत ढंको, किशोर ... जंगल-झाड़ियाँ बाहर ही नहीं हैं, अंदर भी हैं, परत दर परत, गाँठ पर गाँठ जो सदियों से लगती रही है, संदेह की, व्यर्थता की, निराशा की, जिससे टकराकर आवाजें लौट आती हैं। टटोलो उसको, वो क्या है, क्यों है ...

किशोर : पच्चीस बरस इसी टटोलने में निकल गये, चित्रा ...

चित्रा : हाँ, जेबें टटोलने में, पर किसी ने किसी का दिल नहीं टटोला, किसी ने किसी से बात नहीं की ... लोग मरते रहे, और कुछ लोग अपनी झोलियाँ भरते रहे। वही पाप का घड़ा है जो अब फूट रहा है ...

किशोर : तो फूटने दो अच्छी तरह। बर्बादी होनी है तो हो जाय एक बार, जी भर के ... सारी जिन्दगी धुंआते रहने से एक बार जलकर खत्म हो जाना अच्छा है ...

चित्रा : (ईषत् व्यंग्य के स्वर में)
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरं ...

किशोर : (अनसुना करते हुए अपनी बात की रौ में) खून की नदी पार करके ही अगर मंजिल पर पहुँचा जा सकता है — और मैं तुमसे कहता हूँ, चित्रा, दूसरा कोई रास्ता अब इस अभागे देश के लिए नहीं बचा — तो फिर वही सही ... ये उम्र भर की खिटखिट कि देश साला जीता है न मरता, क्या धरा है इसमें ... भूसे का एक ढेर है,

आग लगा दो, सब स्वाहा हो जाय ...

चित्रा : फिर ?

किशोर : उसकी चिन्ता बुड्ढे किया करते हैं ... जवान आज के रोज़ करता है जो कुछ उसे करना है ... ज्यादा हैस-बैस आदमी को किसी काम का नहीं रखता ...

चित्रा : मगर यह तो कोई समझदारी ...

किशोर : भाड़ में जाय वो समझदारी जो आदमी के हाथ-पाँव में सीसा पिला देती है ... हम समझदार नहीं हैं ... समझदार तो वो लोग हैं जिन्होंने गिद्धों की तरह लाश नोच-नोचकर यह ठठरी हमारे लिए छोड़ दी है जिसका नाम हिन्दोस्तान है ! करो अब जो कुछ करना है इस ठठरी का ...

चित्रा : किसी की ठठरी से ही वज्र बना था, किशोर ...

किशोर : मैं नहीं जानता, चित्रा, वो कौन सा मंत्र है जिससे ठठरी का वज्र बन जाता है . . एक से एक सुधारक, एक से एक विचारक, एक से एक नेता ...

चित्रा : नेता कहाँ हैं किशोर, सब अभिनेता हैं ...

किशोर : सब तो फँसकर रह गये इसी दलदल में ... अब तो बस एक मंत्र बचा है जो शायद जगा सके इस मुर्दा देश को ... बम बम महादेव ... मुर्दों की नींद जल्दी थोड़े ही टूटती है ... आज यहाँ, कल वहाँ, परसों कहीं और, देश के कोने-कोने में दस-पाँच लाख धड़ाके हों, हवा में गोलियों की सनसनाहट भर उठे, कहीं भागने को ठौर [illegible] बद लोग बिलबिलाकर अपने दड़बों से

किशोर : (आगे बढ़कर दर्शकों को संबोधित करते हुए) हमने कब कहा कि हम निर्माता हैं ? मकान बनानेवाले और होते हैं, गिरानेवाले और ... हम मकान गिरानेवाले लोग हैं ... बनानेवाले आप आकर बना लेंगे ... अच्छी चौरस जमीन तो मिलेगी उनको, बुलडोजर चली हुई ... पहले इस भुतहे खंडहर से तो नजात मिले ... कैसे मोटे-मोटे खंभे हैं इसके, कितनी मोटी-मोटी दीवारें... मगर हर दीवार टेढ़ी है ... टेढ़ी है मगर खड़ी है ... ऊपर से नीचे तक फट गयी है मगर खड़ी है ... अपनी उसी ऊबड़-खाबड़ जमीन पर ... बहुत अजीब इमारत है, सदियों पुरानी, एक पिरामिड अपने ढंग की, पलीता लगाये बगैर गिरने की नहीं ... डाइनामाइट का पलीता ... समझीं चित्रा, डाइनामाइट का पलीता ...

चित्रा : मुझे डर लगता है, किशोर .

किशोर : मैंने पहले ही कहा था तुमसे ...

चित्रा : नहीं, वो डर नहीं ...

किशोर : यह रास्ता आग और खून का है ...

चित्रा : होगा । जोखिम का डर मैं पीछे छोड़ आयी ...

किशोर : नहीं चित्रा, कुछ भी कहो, तुम्हें अपने साथ घसीटकर मैंने अन्याय किया ... सोमेश ...

चित्रा : व्यर्थ अपने मन को दुखी मत करो किशोर । कोई मुझे घसीटकर नहीं लाया ...

किशोर : फिर भी ... सोमेश बहुत अच्छा आदमी था ...

चित्रा : (अनसुना करते हुए) मैं अपने मन से आयी हूँ ... समझ-बूझकर आयी हूँ ... आना ही था इसलिए आयी हूँ ...

किशोर : आना ही था ?

चित्रा : हाँ, आना ही था ...

किशोर : मतलब ?

चित्रा : हर चीज का मतलब नहीं होता ...

किशोर : तो फिर अब डरना क्यों ?

चित्रा : इस बियाबान अँधेरे और सन्नाटे से ...

किशोर : हाथ में छः गोलियोंवाला कोल्ट रिवॉल्वर .. (आगे बढ़कर लालटेन की लौ बढ़ा देता है)

चित्रा : जहाँ हाथ को हाथ नहीं सूझता, न किसी का चेहरा दिखायी पड़ता है और न कोई आवाज आती है, सिवाय इस सन्नाटे के, जो अँधेरे और वीराने की आवाज है ... जहाँ न किसी को मंजिल का पता है और न रास्ते की पहचान ... भटकते रहो सारी उम्र, चक्कर खाते रहो अपने उसी घेरे में, और जब थक जाओ तो वहीं गिर पड़ो और पिस्तौल छाती से लगाकर ..

किशोर : (चीख पड़ता है) चित्रा ! ! ! ! !

चित्रा : घबराओ मत, किशोर ... गोली नहीं है ...

किशोर : बंदूक के साथ कभी खेल नहीं करना चाहिए ... कभी-कभी बड़ा धोखा हो जाता है ...

चित्रा : (अपनी बात की रौ में) ये मौत का डर नहीं है, अदृश्य का डर भी नहीं है ... जो पैदा हुआ है, मरेगा ... लेकिन मरना सार्थक हो तो उतना डर नहीं लगता ...

किशोर : (गुस्से और दर्द के साथ एक ऐसी तीखी आवाज में जो आत्मविश्वास की कमी को तीखेपन से पूरा करना चाहती है) हमारा मरना निरर्थक है ?

चित्रा : (दो क़दम आगे बढ़कर, आमने-सामने, आँखों
डालकर) हाँ, और तुम भी इस बात को
हो ...

किशोर : (तेज़ आवाज़ में) झूठ, बिलकुल झूठ ... (फि
एकाएक मंद पड़ जाता है) सार्थक-निरर्थक का
इतना आसान नहीं है, चित्रा ...

चित्रा : तुम्हारे स्वर में इतना अनिश्चय क्यों है, किं
शायद तुम मुझसे नहीं किसी और से बात कर रहे
सार्थक-निरर्थक का निर्णय भी तुम्हें वहीं से
जायेगा ...

किशोर : अधीर मत हो, चित्रा .. पेड़ लगाते ही फल
मिलता ...

चित्रा : लेकिन जब भी मिलता है तब वही जो कि बोया ग
है ...

किशोर : हम विद्रोह बो रहे हैं ...

चित्रा : सुनने में बात बड़ी अच्छी है, मगर उतनी ही अधूरी
जितनी कि ये कहना कि हम जा रहे हैं ... कहाँ
किधर ? किसके पास ?

किशोर : उतना सब कौन जानता है ? और ज़रूरी भी क्या है ?
जी घबराने पर आदमी बहुत बार यों भी चल देता
है, जिधर भी पैर उठ जायें, जिस भी बाट जा
लगें ...

चित्रा : वो बड़ा खतरनाक जाना होता है, किशोर ... वो रास्ता
अकसर किसी सूने घाट पर जाकर खत्म होता है या
किसी रेल की पटरी पर ...

किशोर : जहाँ भी खत्म होता हो, अच्छा है एक जगह पड़े-पड़े

एड़ियाँ रगड़ने से ... (सरताज, रोमी, आनन्द, अपने घायल साथी नीरू को स्ट्रेचर पर उठाकर लाते हैं।)

सरताज : (गुस्से का ज़हर पिये हुए तीखे स्वर में) लीजिए, चित्रादी, आश्विनबाबू ने ये तोहफ़ा भेजा है।
(सब स्ट्रेचर ज़मीन पर धीरे से रख देते हैं।)

चित्रा : (घबराकर) क्या हुआ नीरू को ? मरा तो नहीं ? (लपककर उसके पास जाती है, नाक के पास हाथ लगाती है, नाड़ी देखती है, फिर एक नज़र उसके ज़ख्मों पर डालती है।)

सरताज : नहीं चित्रादी, मरा नहीं ... साँस अभी बाक़ी है ... ज़रा-ज़रा होश भी है।

रोमी : सब उसी कुंडल का काम है ...

किशोर : (नीरू के पास पहुँचकर उसकी चोटों पर एक उड़ती नज़र डालते हुए भारी आवाज़ में) बड़ी जल्दी चोट की तुमने, आश्विन।

आनन्द : कमीज़ में ये एक पुर्ज़ा भी लगा मिला (जेब से निकालकर देता है)

किशोर : (पढ़ता है) 'ये एक बानगी है। अब भी चेत जाओ वर्ना कल तुम सबका यही हाल होगा !' (त्योरियाँ चढ़ जाती हैं) इसका बदला तो फ़ौरन लेना होगा, सरताज ! (सरताज निःशब्द सुनता है, बस एक बार धीरे से सर हिलाता है और बाहर चला जाता है।)

चित्रा : चोटें बहुत गहरी लगी हैं किशोर। डाक्टर बुलाना होगा। मैं तब तक फ़र्स्ट एड किये देती हूँ। (भीतर चली जाती है।)

किशोर : रोमी, डाक्टर मुकर्जी (रोमी जाता है।) ये कैसे

क्या हुआ आनन्द ? (चित्रा मरहम-पट्टी का सा[illegible] लेकर आती है और आनन्द को अपने साथ लेकर की पूछताछ करने लगती है ।)

आनन्द : मैं ना इन्हें आगे ही कहूँगा । बकता ही नि[illegible] गया उधर ।

किशोर : (डपटकर) कौन निकल गया ? यहीं नालायकी [illegible] लोगों की ... मैंने साफ-साफ कह दिया था कोई क[illegible] उधर अगर नहीं जायेगा । (बेचैनी में टहलने लग[illegible] है । फिर नीरू के पास बैठ जाता है । चित्रा तन्[illegible] भाव से अपना काम किए जा रही है । तभी दं[illegible] डाक्टर मुखर्जी को साथ लिये हुए आता है । डाक्[illegible] सीधे नीरू के पास पहुँचता है, जमीन पर ही अप[illegible] बैग रख देता है और घुटनों के बल बैठकर नीरू की परीक्षा करता है । दिल की धड़कन वगैरह सब ठी[illegible] है । चोटों को देखता है जिनकी चित्रा अब तक अच्छ[illegible] तरह सफाई कर चुकी है । चोटों से खून जाना भी बन्द हो चुका है ।)

डाक्टर : आप तो बहुत अच्छी नर्स हैं चित्राजी ।

चित्रा : पूरोफ्लेविन लगाकर मैं अब पट्टी बाँधे देती हूँ ।

डाक्टर : फ़र्स्ट क्लास ... चोटें तो गहरी हैं पर चिन्ता की को[illegible] बात नहीं । मैं बस एक सुई लगाये देता हूँ जिस[illegible] इन्फ़ेक्शन का फिर कोई डर न रहे । (बैग खोलक[illegible] उसमें से सुई निकालता है ।)

चित्रा : ब्वॉयल कर दूँ ?

डाक्टर : नहीं, कोई जरूरत नहीं । (सुई पर रुई फेरते हुए) प्योर अल्कोहल से भी वही काम हो जाता है । (सुई में

दवा भरता है और इजेक्शन लगा देता है। नीरू आँख खोल देता है।) ब्रेव बॉय नीरू ... (हल्के से सिर थपथपाता है, बैग मे सुई और अल्कोहल की शीशी सहेजकर रखता है और बैग उठाकर चला जाता है।)

चित्रा : अच्छा रोमी, बाहर देखो सतीश-हरनाम हैं कि नहीं ? मैं तब तक दवा लगाकर पट्टी बाँधती हूँ, फिर तुम लोग जाओ नीरू को सँभालकर उसके घर पहुँचा दो। (आनन्द और रोमी चले जाते हैं।)

चित्रा : (दवा लगाते-लगाते) बड़ी बुरी तरह मारा है हत्यारों ने ...

किशोर : और तुम इन लोगों की तरफ़ दोस्ती का हाथ बढ़ाने को कहती थीं। अरे, ये पापी साँप हैं साँप, जब तक इनका मुँह अच्छी तरह कुचला नहीं जायेगा, ये लोग ठीक नहीं होंगे।

चित्रा : (पट्टी बाँधते-बाँधते, बहुत भोलेपन से) अब तक शायद वहाँ भी ऐसे ही किसी लड़के की मरहम-पट्टी

... भर की देर रहती है, फिर

... ये तो सब मरने के

चित्रा : नहीं किशोर, रास्ता है, पर उसे खोजना है..

किशोर : जहाँ सब बस अपनी एक लीक पकड़े चले जा अपने-अपने घोंसलों के लिए तिनके बटोरने ?

चित्रा : एक बात पूछूँ किशोर ? तुमने कभी चिड़ि घोंसला उजाड़कर देखा है ?

किशोर : नहीं। क्यों ?

चित्रा : मैंने देखा है, इसलिए मैं जानती हूँ ... चाहे जि उजाड़ो, हर बार एक नया घोंसला तुम्हें दे मिलेगा।

किशोर : (हल्के से ताने के स्वर में) तो फिर तुमने क्यों बनाया अपना घोंसला ? सोमेश के पास तो सब था ... बँगला, मोटर, बैरा, खानसामा, बाग-बगी ... क्या नहीं था . . हीरे-मोती से ढाँक देता तुम ... साल में तीन बार योरप की सैर होती ... लो हाथों हाथ लिये फिरते ...

चित्रा : (दुखी स्वर) मैं सुन रही हूँ ... बड़ी देर से सुन रह हूँ ... गिनाओ, सब सब गिनाओ, जो तुम्हारे भीतर करक रहा है ...

किशोर : मैं तो घोंसले की बात कर रहा था चित्रा। क्यों नहीं बनाया तुमने अपना घोंसला ? आराम से रहती अपने बाल-बच्चों में ... मेरे पास क्या है जो मैं तुम्हें दे सकूँ सिवाय जोखिम के। ये तो कोई घोंसला नहीं है ..

चित्रा : और जो किसी को ऐसा ही घोंसला पसंद हो ? घोंसले भी सब एक से नहीं होते, किशोर ... फिर मैं तुमसे पूछकर तो आयी नहीं ...

पीताम्बर : चक्कर देकर आना ठहरा ...

किशोर : बुड्ढा नंबरी पाप है ...

पीताम्बर : पाप न होता तो यह एक करोड़ की रकम कहाँ से आती !

किशोर : कहीं कोई उल्टी-सीधी बात न सोच बैठा हो ... और तो कुछ नहीं, मैं इनका काम तमाम कर दूंगा ... (सिर को झटका देकर बाहर की ओर इशारा करता है)

पीताम्बर : नहीं, किशोर, प्रीतम सिंह अब आता ही होगा ... होशियारी से जाना-आना है। थोड़ी देर-सबेर ...

किशोर : चिट्ठी तो ठिकाने पर पहुँच गयी थी न ?

पीताम्बर : ऐक्शन के साथ-साथ ... कल्यान जैसा मुस्तैद आदमी ... अच्छा मैं चलूँ अपनी चौकी पर। (पीताम्बर चला जाता है। चित्रा का प्रवेश।)

किशोर : ये सेठ के बच्चे रुपया दाँत से पकड़ते हैं ... कहीं बेटे की जान पर खेल न जाय ...

चित्रा : बेटे की जान पर कोई नहीं खेलता किशोर ... मगर तुम कितना ही कहो यह कोई रास्ता नहीं है ... इंसाफ की लड़ाई इंसाफ के हथियारों से ही लड़ी जा सकती है ...

किशोर : (झुंझलाकर, तीखी आवाज में) छोड़ो भी वो सब सड़ी पोथियाँ तुम्हारी ... गाधियन बूढ़ा ... मैंने भी खूब पढ़ रक्खा है ... सुभाषितों से इतिहास नहीं बदला करता ...

चित्रा : डकैतियों से भी नहीं बदला करता ... सवाल देश को जगाने का है ...

ही नोट हैं ...

: तो अब ?

: तुम्हे कहना नहीं पड़ेगा, मित्रा .. इसी दम मैं उसको छुड़वाये देता हूँ .. (पुकारता है) पीताम्बर, पीताम्बर ... (पीताम्बर आता है) पीताम्बर, बंदी को अब रिहा कर देना है ... दोनों हाथ पीछे करके बाँध देना, और आँखों पर पट्टी ... सीधे रास्ते से मत ले जाना ... और हाँ देखो, बन्दूक की नली दो-एक बार चुपके से पीठ में छुला देना तो सब ठीक रहेगा ... जाओ, और इस समय नाकों पर जो लोग हैं सबसे कहते जाना पूरी चौकसी रक्खें ... (पीताम्बर चला जाता है)

न : अब हमें फ़ौरन यहाँ से डेरा उखाड़ देना चाहिए ...

र : क्यों, कोई खतरा ?

म : नहीं, खतरा तो वैसा कुछ नहीं ... मगर अब बात बदल गयी है ... जब तक हीरामन तोता हमारे कब्ज़े में था, तब तक कोई डर नहीं था ... लेकिन अब चिड़िया पिंजरे से बाहर हो गयी है ...

रा : तो अभी क्या बिगड़ा है ... पीताम्बर को रोक लो ..

र : क्या फ़ायदा .. जैसे कल छोड़ा वैसे आज ... दिन की रोशनी से रात के अँधेरे में छोड़ना फिर भी अच्छा है ...

म : लेकिन अब खिसक चलो यहाँ से ... देर करना ठीक नहीं ...

र : (झिरकी के स्वर में) तुम तो ऐसा कर रहे हो जैसे भूत देख लिया हो ! ... (पैनी आँखों से प्रीतम को

चित्रा : अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता, किशोर ...

किशोर : कोई अकेला चना ही भाड़ फोड़ता है चित्रा ... बाः तो सब अच्छी तरह बालू मे भुनकर खानेवालों के पे मे पहुँच जाते हैं ...

चित्रा : नही किशोर, हमे ... धीरज के साथ अपनी बात ...

किशोर : (गुस्से मे अपने बाल पकड़कर खींचता है, फिर चीख कर) धीरज . . धीरज ... धीरज ... कहाँ तक धीरज! कब तक धीरज ?

चित्रा : जब तक लोग ...

किशोर : बेकार है ... सब बेकार है ... धीरज का पाठ पढ़ते-पढ़ते ही तो हम इस रसातल को पहुँच गये, चित्रा... अब एक बार अधीर होकर भी देखना है ...

(प्रीतम सिंह चमड़े की एक अटैची लिये आता है। किशोर उसकी आहट पाकर पीछे को मुड़ता है, और प्रीतम को देखकर उसके चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती है, कि जैसे बड़ी राहत मिली हो। वो राहत प्रीतम के सकुशल लौट आने की भी है और न लौटने की स्थिति मे थडानी को मार देने की अपनी बाध्यता से बच जाने की भी।)

किशोर : (आगे बढ़कर प्रीतम की दोनो बाँहें मजबूती से पकड़ते हुए) चलो तुम आ गये ... मैं तो डर गया था ...

प्रीतम : (अटैची किशोर के हाथ मे देते हुए) जरा देर लग गयी ...

किशोर : सब ठीक रहा न ?

प्रीतम : बिल्कुल ... घड़ी के काँटे मे ...

किशोर : (अटैची खोलकर देखते हुए) ठीक है, सब दस-दस के

मे खोंसते हुए) तो फिर ऐसी बातें क्यों कर रहे हो ?

प्रीतम : क्योंकि बुड्ढा थडानी भेड़िये की जात का आदमी है ... एक लाख रुपया यों ही नही उगल देगा ...

किशोर : उन्हें क्या पता हम लोग कहाँ है ?

प्रीतम : बेकार बहस मत करो, किशोर ... हमारे पास वक्त बहुत थोड़ा है ... दुनिया की सब अक्ल के हमी ठेकेदार नही हैं ... मिलने की जगह पर अपना दाँव देखकर जैसे मै छिपा बैठा था, वैसे ही कौन जाने उसके भी दो-चार लोग छिपे बैठे हों ... और दूर-दूर से मेरे पीछे लग लिये हो ... सादी वर्दीवालों का पता भी तो नही चलता कौन क्या है ...

किशोर : ये तो कुत्ते-बिल्लो का खेल है ...

प्रीतम : आया तो पूरी होशियारी से, काफी लम्बा चक्कर देकर ... मगर कौन जाने ... पुलिस के सब बड़े-बड़े अमलो के साथ उसका रोज का उठना-बैठना है, प्याले की दोस्ती है ... जान लड़ा देंगे सब ... किसे पता टैक्सीवालो मे भी उनके कुछ खरीदे हुए लोग हो ...

किशोर : (झटका-सा लगता है, जैसे एकाएक खतरा सामने आ गया हो। सोच मे डूब जाता है। एक क्षण के लिए। माथे पर शिकन। आँखें छोटी होकर जैसे और पैनी हो जाती हैं। भीतर के तनाव से चेहरे पर उसी एक-दो क्षण मे कितने रग आते हैं जाते हैं। अन्त में, प्रस्तुति। अब वह खतरे का सामना करने के लिए तैयार है। चेहरे का कठिन भाव अब कठोर हो जाता है। पिस्तौल मे गोलियाँ डालते हुए) तो फिर चलो, निकल आयें यहाँ से ... चित्रा, तुम भी ... (पिस्तौल को

घूरते हुए, कि जैसे उसके चेहरे को पढ़ने की कोशि- कर रहा हो) वहाँ पर तो कुछ नहीं हुआ ?

प्रीतम : नहीं, वहाँ पर क्या होगा ...

किशोर : फिर क्यों इतना हड़बड़ा रहे हो ? पीताम्बर को लेने तो ..

प्रीतम : उतना वक्त भी शायद न मिले ...

किशोर : (बिजली की तेजी से छुरा कमर से निकालकर प्रीतम के पहलू में लगाते हुए, चीखकर) मतलब ? तुमने तो कोई सौदा नहीं कर डाला ? ! (किशोर की आँखें अंगारों की तरह दहकने लगती हैं। बिना फुर्ती से अपने रिवॉल्वर में गोलियाँ भरती है और आनन-फानन प्रीतम के पीछे आकर खड़ी हो जाती है) भूलना मत, प्रीतम, हमारे यहाँ ग़द्दारी की सजा मौत है, कुत्ते की मौत ...

प्रीतम : (शान्त। अविचल। चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट) तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं किशोर, उसकी दवा करो ... इतना अविश्वास लेकर तुम कहीं नहीं पहुँच सकते ... मुझे ग़द्दारी करनी होती तो तुम्हारी यह अटैची लेकर यहाँ न आता, पुलिस को तुम्हारा सुराग देकर अपने घर गया होता या फिर उनके साथ आता ... या फिर उनके लॉक-अप में बन्द होता, लालबाग थाने की मोटी-मोटी पत्थर की दीवारों के पीछे, जहाँ सन्तरी पहरे पर खड़े होते और ये छुरा नहीं तुम्हारी बन्दूक भी मुझ तक न पहुँच सकती ... (छुरे को उपेक्षा से एक ओर ठेल देता है)

किशोर : (आश्वस्त होकर, कुछ लज्जित सा, छुरा वापस कमर

पायेंगे। लेकिन यह जरूरी है कि यह आवाज़ बहुत तेज़ और तीखी न हो, रुँधी-रुँधी-सी आवाज़ हो, हथगोला फूटने या बंदूक चलने की सीधी आवाज़ से ज्यादा उसका धमाका। सतीश भागा हुआ आता है।)

सतीश : (घबरायी हुई आवाज़ में) हमला हो गया!

किशोर : (स्वर में हल्की-सी घबराहट) किधर? कहाँ?

सतीश : कब्रिस्तान की तरफ़ से ... चार-पाँच ट्रक भरके सिपाही उतरे हैं .. सब तरफ़ फैल गये हैं और पेड़ों के पीछे से फ़ायर कर रहे हैं ...

किशोर : चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ ...

चित्रा : मैं भी चल रही हूँ, किशोर ...

किशोर : तुम और प्रीतम गोली-गोला जल्दी से कहीं गाड़ दो ... पीछे आकर निकाल ले जायेंगे ...

चित्रा : प्रीतम अकेले ही कर लेगा ... मैं तुम्हारे साथ आ रही हूँ ...

किशोर : क्यों, प्रीतम?

प्रीतम : जो कहो ...

किशोर : तो चलो, चित्रा ... कौन जाने ये हमारी आख़िरी लड़ाई हो ... तुम भी झटपट आ जाना, प्रीतम .. जल्दी से दो-चार हथगोले तो हमको दे दो ... और एक माचिस की डिबिया ...

प्रीतम : माचिस?

किशोर : हाँ, सूखी पत्तियाँ बटोरकर हम इस अमराई को आग लगायेंगे ... एक बार आग भक पकड़ी तो समझो काम हो गया ... फिर हमको कोई नहीं मार सकता ...

तरफ़ इशारा करता है)

चित्रा : [illegible] अब भी ...

किशोर : प्रीतम, तुम ?

प्रीतम : मैं भी तैयार हूँ ।

किशोर : पीताम्बर का क्या होगा ? ...

प्रीतम : ... ढूँढ़ता-ढाँढ़ता पहुँच जायेगा ... दल के सभी लोगों को पता है यहाँ के बाद अपना अपना डेरा कहाँ पर होगा ...

किशोर : नहीं, तुम लोग चलो ... मैं रुका जाता हूँ ...

प्रीतम : दिमाग़ ख़राब है ?

किशोर : डरो मत ... यहाँ नहीं बैठा रहूँगा ... आस-पास कहीं घुस लूँगा .. फिर हम दोनों साथ-साथ आयेंगे ...

चित्रा : झूठ बात .. तुमको यहाँ छोड़कर हम लोग नहीं जा सकते ..

किशोर : कहना मानो, चित्रा ... जितने जो साथी बाहर हैं चौकियों पर, सब को साथ लेकर तुम दोनों निकल जाओ ।

प्रीतम : बहुत क़ीमती वक्त गँवा रहे हो, किशोर ... जो बात नहीं हो सकती, नहीं हो सकती ...

किशोर : तो जाओ, ख़बर करो सब को, कि अब यहाँ से कूच करना है ...

(प्रीतम जाने के लिए मुड़ता है कि गोलियों और हथगोलों की आवाज़ सुनायी पड़ती है, जो उत्तरोत्तर पास आती जा रही है । स्टियरियोफ़ॉनिक साउंड सिस्टम की मदद से यह आवाज़ पूरे हॉल में सब तरफ़ भर उठेगी और दर्शक भी अपने को उससे घिरा हुआ

लड़ाई है आज ... कौन जाने ... होगा जो होगा ...
(तेजी से मंच पार करके बाहर निकल जाता है, जहाँ लड़ाई हो रही है। तभी एक दर्द में डूबी हुई जोर की चीख सुनायी पड़ती है ... किशो ः ः र ! ... और उसके आधे या पौन मिनट बाद पुलिस कप्तान, दो-चार सिपाहियों और चित्रा का प्रवेश। चित्रा बिल्कुल निहत्थी है, हथियार सब छीने जा चुके हैं। उदास, शोकमग्न चेहरा, भारी कदम।)

कप्तान : हथियार सब कहाँ हैं ? निकाल दो ...

चित्रा : (हाथ से इशारा करते हुए) यहाँ कहीं कुछ नहीं ...

कप्तान : (अपने सिपाहियों से) घेर लो इस जगह को और अच्छी तरह तलाशी लो .. जाओ ... दो संतरियों को पहरे पर छोड़ते जाना ... (सिपाही सब चले जाते हैं) मुझे बहुत दुःख है चित्रा, तुमने शायद मुझे पहचाना नहीं ...सोमेश ...

चित्रा : (बर्फ जैसा ठंडा स्वर) वर्दी से बड़ी पहचान और क्या है !

कप्तान : वर्दी के पीछे आदमी होता है...

चित्रा : हाँ, मगर पीछे होता है ... ऊपर वर्दी रहती है ... आदमी ढँक जाता है !

कप्तान : चेहरा तो खुला रहता है ?

चित्रा : चेहरा ? आदमी का चेहरा गाय का चेहरा नहीं होता. अविनाश ... भेड़िये का चेहरा भी नहीं होता ...

कप्तान : मतलब ?

चित्रा : नाटक का चेहरा होता है ...

कप्तान : यानी मैं नाटक कर रहा हूँ ?

प्रीतम : और जो न मरा इतनी जल्दी मे ?

किशोर : तो ख्वाजा जो होगा . . लाओ, हथगोले ... जल्दी करो . (प्रीतम मंच के दाहिने कोने में रक्खे हुए बड़े-बड़े तीन बोरों की तरफ बढ़ता है। किशोर, चित्रा, सतीश भी उसके पीछे-पीछे जाते हैं। प्रीतम एक बोरे में से हथगोले निकालकर तीनों को पकड़ा देता है, जिन्हें वो अपनी जेबों में ठूँस लेते हैं। फिर किशोर लपककर अपनी राइफ़ल उठा लेता है, सीने पर लगी कारतूस पेटी में से कारतूसें निकालकर जल्दी-जल्दी अपनी राइफल में डालता है और सेफ़्टी कैच लगाकर अपने कंधे पर लटका लेता है। फिर चित्रा और किशोर आखिरी चीज़ अपनी पिस्तौलें खोलकर देखते हैं और चलने के पहले दोनों की आँखें एक बार मिलती हैं।

यह सारा ऐक्शन मंच के दाहिने मध्य होता है। बाहर जाने का रास्ता बायें को है। फ़ायरिंग की आवाज़ इस बीच और पास आ गयी है, बहुत पास।)

किशोर : आखिर वो मंज़िल आ ही गयी, चित्रा ... (चित्रा कोई जवाब नहीं देती, बस उदास-सी एक मुस्कराहट और फिर तीनों मज़बूत क़दमों से बाहर चले जाते हैं। प्रीतम सिंह जल्दी-जल्दी, एक के बाद एक तीनों बोरों को घसीटकर मंच के दाहिने तरफ़ के रास्ते से बाहर ले जाता है, पीछे कहीं ज़मीन में गाड़ने के लिए। यह ऐक्शन एक-डेढ़ मिनट का है। नेपथ्य में ज़ोर-शोर में लड़ाई चल रही है। प्रीतम सिंह तीसरे बोरे को भी बाहर पहुँचाकर लौटता है।)

प्रीतम : पत्तियों से ढाँक भी दिया अच्छी तरह ... बड़ी कठिन

कप्तान : देखता हूँ रंग काफी गहरा चढ़ा है !

चित्रा : चलो, इतना तो दिखा ... मैं तो समझी थी बिलकुल ही अंधे हो गये !

कप्तान : (अपने अफसरी रोब के साथ तनकर) ज़रा होश में चित्रा, तुम्हें शायद पता नहीं तुम किससे बात कर रही हो !

चित्रा : मैं खूब जानती हूँ मैं किससे बात कर रही हूँ, अविनाश चौधरी से ... जिससे बड़ा जल्लाद, सुना है, पुलिस के महकमे में दूसरा नहीं है ... लेकिन मुझे किसी का डर नहीं ...

कप्तान : शायद इसलिए कि तुम सोचती हो अविनाश तुमको जानता है . .

चित्रा : नहीं, इसलिए कि मौत से बड़ी सज़ा तुम्हारे पास भी नहीं ...

कप्तान : है, मौत से भी बड़ी सज़ा है ... जिसके आगे आदमी खुद अपनी मौत की भीख माँगता है ...

चित्रा : मुझे डराने की कोशिश मत करो अविनाश, इस रास्ते पर जो आता है, सर पर कफन बाँधकर आता है।

कप्तान : एक मुहावरा ... कोरा मुहावरा ... मार के आगे भूत भागता है ...

चित्रा : तुम्हारे पुलिस मैनुअल में ऐसा ही लिखा होगा !

कप्तान : पुलिस मैनुअल की ऐसी-तैसी ... रोज़ अपनी आँखों से देखता हूँ ..

चित्रा : उन्हीं अपने चोरों-डाकुओं को, पेशेवर खूनियों को ...

कप्तान : जिन्हें तुमने अपनी पलटन में भर लिया है।

चित्रा : हाँ, वैसा ही नाटक जैसा किशोर को असपताल भेजना ... तुम भी जानते हो कि उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं ... गोली ऐन सीने में लगी है ... शायद अब तक मर भी गया होगा ...

कप्तान : पर ये तो बड़ा दु:खान्त नाटक रहा चित्रा जो इस जगह पर आकर खत्म हुआ, पुलिस की चपेट में !

चित्रा : नया उसमें क्या है ... जिन्दगी का नाटक मरघट पर आकर ही खत्म होता है ...

कप्तान : तुम बहुत बदल गयी, चित्रा ...

(चित्रा, मौन, शून्य में देखती रहती है।)

कप्तान : क्या मिला तुम्हें यहाँ आकर ?

चित्रा : जिन्दगी बनिये की दूकान नहीं अविनाश बाबू और न हर चीज तराजू पर तोली ही जा सकती है !

कप्तान : आज सोमेश के यहाँ सुख-चैन से बैठी होती — तुम्हारा अपना घर होता, अपने बच्चे, अपनी छोटी-सी दुनिया ...

चित्रा . और फिर ?

कप्तान : (हतप्रभ। कुछ-कुछ अटकते हुए) मतलब ... मतलब कि तुम खुश रहती ...

चित्रा : किसने कह दिया आपसे कि मैं खुश नहीं हूँ ?

कप्तान : अपने चेहरे से पूछो।

चित्रा : चेहरे की बात चेहरा जाने, मैं बहुत खुश हूँ ...

कप्तान : किशोर ने अच्छी पट्टी पढ़ायी है।

चित्रा : किशोर का नाम मत लो, अविनाश...

कप्तान : (कुछ व्यग्य से) क्यों ? दर्द होता है ?

चित्रा : नहीं, उस नाम को धब्बा लगता है।

नहीं चल सकता ...

चित्रा : सच्चा लॉ ऐंड ऑर्डर वही है जो किसी मॉरल लॉ में से निकलता है, जो इंसाफ़ पर खड़ा है ... जहाँ इंसाफ़ नहीं है वहाँ कोई लॉ ऐंड ऑर्डर नहीं चल सकता ... ... दो दिन नहीं चल सकता ... चरमराकर टूट जायेगा ...

कप्तान : कैसे टूट जायेगा ? हम किस दिन के लिए हैं ?

चित्रा : तो ठीक है, घुमाओ अपना डंडा, जितना घुमा सको ... अगर इस हत्यारे समाज की पहरेदारी करना ही तुम्हारा लॉ ऐंड ऑर्डर है ... मारो जितने लोगों को मार सको ... मगर कितनों को मारोगे ? ... लाखों-करोड़ों नौजवान इधर से उधर लुढ़कते फिर रहे हैं, जिनका कोई भविष्य नहीं और जो — अच्छी तरह कान खोलकर सुन लो — आज नहीं तो कल हमारी फ़ौज के सिपाही होंगे ... किसी उम्मीद से नहीं, नाउम्मीदी से चूर होकर ... इसलिए नहीं कि हमारे पास कोई लड्डू-पेड़े रखे हैं उन्हें देने को, सिर्फ़ इसलिए कि जहाँ दूसरे उन्हें जीने का ढंग नहीं बता सके हम उन्हें मरने का ढंग बता रहे हैं .. चे ग्वेवारा ...

कप्तान : जहन्नुम में गया तुम्हारा चे ग्वेवारा ... शर्म भी नहीं आती ... सारी जवान पीढ़ी को तहस-नहस करके रख दिया !

चित्रा : हम क्या तहस-नहस करेंगे, सब पहले ही ढेर हो चुका है ... कब तक ? आख़िर कब तक ? ... एक न एक दिन झूठ की चादर उघड़नी ही थी ...

कप्तान : झूठ की चादर ?

चित्रा : हमारे सिर मत मढ़ो लड़को ... अपनी पलटन का हाल हम बेहतर जानते हैं ... होंगे वहाँ हत्यारे ... यहाँ वैसा कोई नहीं .. सब अच्छे गम्भीर लड़के हैं, जिनका खून, जमाने की मिलावट से दूर, अभी साफ़ है और गर्म है ... जो जिन्दगी में कुछ करना चाहते हैं ... कोई बड़ा काम, अच्छा काम, जिससे दुनिया में उनका नाम हो ...

कप्तान : खून करके भी नाम तो हो ही रहा है !

चित्रा : (अनसुना करते हुए, अपनी बात की रौ में) लेकिन कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि इस अंधेर नगरी में, जिसके तुम संतरी हो, सब तरफ़ चोरों का राज है ...

कप्तान : (डपटते हुए, आवाज़ बढ़ाकर) चित्रा !

चित्रा : (अपने उसी प्रवाह में) हाँ, चोरों का राज है ... जिधर जाते हैं दरवाज़ा उन्हें बंद मिलता है ... और उसे खोलने का एक ही मंत्र है ... हरे-हरे नोटों की गड्डियाँ ...

कप्तान : ये कोई नयी बात नहीं ... बाबा आदम के ज़माने से यही चलता आया है ...

चित्रा : नहीं चलेगी ... अब यह अंधेरनगरी नहीं चलेगी ... इस पार या उस पार, फ़ैसला होकर रहेगा ...

कप्तान : इसी तरह ?

चित्रा : हाँ, इसी तरह ... सड़-सड़कर मरने से लड़कर मर जाना ज़्यादा अच्छा है ...

कप्तान : कैसी खूबसूरत बात है ! मगर लॉ.एंड ऑर्डर भी कोई चीज़ है चित्रा, जिसके बिना कोई देश कोई समाज

में पकड़े-पकड़े, कुछ अड्डों की, कुछ लोगों की, दो एक बहुत ही गुप्त मुलाकातों की। चित्रा तसवीरें देखती है, उसके चेहरे पर हैरानी और चिन्ता के रंग दिखायी पड़ते हैं, पर वह उसी तरह खामोश खड़ी रहती है। कप्तान हर एक-दो तसवीरों के बाद कनखियों से चित्रा को देखता है, कि जैसे उसके चेहरे को पढ़ने की कोशिश कर रहा हो। फिर आखिरी तसवीर पर ठहरते हुए) तुम जानती हो चित्रा ये कौन आदमी है, जो पिछले महीने बाहर कहीं से आया था ? जिसे गाड़ी से उतारने के लिए तुम लोगों ने पीताम्बर को भेजा था ? ... बड़ा तेज लड़का था पीताम्बर ..

चित्रा : था ?

कप्तान : हाँ .. अभी मारा गया .. चैलेंज करते ही उसने हमारे एक आदमी को मार गिराया .. फिर इधर से भी गोली चली और ... (चित्रा के चेहरे पर दुःख की एक भाँई) बंद करो अब ये खूनखराबा, चित्रा .. सोच लो। अच्छी तरह सोच लो। अब भी समय है ...

चित्रा : (व्यंग्य से मुस्कराकर) ईमान बेचने का भी कोई समय होता है, अविनाश बाबू। वह तो सदाबहार खेती है।

कप्तान : कुछ काम नहीं आयेंगे ये अच्छे-अच्छे जुमले तुम्हारे, बाजी एक बार हाथ से निकल जाने पर ...अभी तो सब कुछ मेरे बस में है ... बेदाग छुड़ा लाऊँगा तुम्हें ... बाखबात आई० जी० को भेजते ही बात बदल

चित्रा : हाँ, मुझ को बाहर ... जनता राज के नाम पर ज[illegible] राज ... जहाँ सब एक-दूसरे को फाड़ खाने में [illegible] हैं और कोई किसी का सगा नहीं ... हमारा [illegible] इसमें कुछ नहीं है . हम तो सिर्फ एक 'जंगल' [illegible] जवाब दूसरे जंगल में दे रहे हैं ...

कप्तान : बुरा कर रहे हो ... बहुत बुरा कर रहे हो ... [illegible] कहीं पहुँचने का रास्ता नहीं है ...

चित्रा : पहुँचनेवाले रास्ते तो सब देख लिये इन पच्चीस बरसों में .. सब कुर्सियों पर जाकर खत्म होते हैं या सेठों की मोटी-मोटी तिजोरियों पर ... अब एक रास्ता यह भी सही जो कहीं पहुँचता नहीं .. जो बस एक रास्ता है जिस पर तुम किसी दिन एकाएक चल पड़ते हो, कहीं पहुँचने के लिए नहीं, सिर्फ इसलिए कि बैठे-बैठे जी घबराता है ... एक सूना पहाड़ी रास्ता जो तुम्हारे साथ चलता है जहाँ तक तुम उसके साथ चल सको ...

कप्तान : और जो ये रास्ता किसी कालकोठरी का रास्ता हो ?

चित्रा : तो क्या . सभी तो कालकोठरी है ... जहाँ भी आदमी का दम घुटता हो ... साँस लेना दूभर हो ... करो जो कुछ तुम्हें करना हो ... गवाही-साखी बटोरने की भी फिक्र मत करो ... मैं अपना जुर्म पूरा-पूरा इकबाल करूँगी ...

कप्तान : और कुछ कर भी नहीं सकती, चित्रा ... गवाही-साखी की हमें कमी नहीं ... दो-चार तसवीरें यहाँ भी जेब में पड़ी हैं ... देखोगी ? (जेब से तसवीरें निकालकर दिखाता है, एक के बाद एक, अपने हाथ

कप्तान : जहाँ डंडे पड़े सब ठीक हो जायेगा ...

चित्रा : कुछ भी ठीक नही होगा ... पहले उस कोढ़ को ठीक करो जिसकी ये खाज है ... तुम भी जानते हो कि लाठी-गोली कोई जवाब नही है ... ऊपर से नीचे तक सब कुछ सड़ गया है .. एक लाश है जिसे अनगिनत गिद्ध बैठे नोच रहे है — और अविनाश बाबू का डंडा जो है वो उन्ही गिद्धो की पहरेदारी के लिए !

कप्तान : (डपटते हुए) चित्रा !

चित्रा : (अपनी बात की रो में) जिन्हें बस एक चिन्ता है — टेढ़े-सीधे, सही-गलत, जैसे भी हो, रुपया अपने घर मे आये ... उन पर जाकर चांप क्यो नही चढ़ाते ... कि हमी बच गये हैं डंडा बजाने को ? मगर कहाँ, उन हरामखोरो को तो कोई फूल की छड़ी से भी नही मारता .. माई-बाप जो ठहरे तुम्हारी हुकूमत के !

कप्तान : क्या वाही-तबाही बक रही हो, चित्रा !

चित्रा : (अनसुना करते हुए) नही, माई-बाप से भी बढ़-कर ... राजा ... हमारे इस जनता राज के ... जिन्हें हर चीज की छूट है .. जो मन चाहे करें ... बस थैली पहुँचाते रहें ... चाहे करके देख लो अविनाश, तुम उन्हे छू भी नही सकते ... सब क़ायदे-कानून तुम्हारे बस हमारा गला काटने के लिए हैं ...

कप्तान : क़ानून सब के लिए एक है ... क़ानून से बड़ा कोई नही ...

चित्रा : चाँदी का जूता ... सब क़ानून जिसके पेट मे घुस जाता है ...

कप्तान : तभी तुम लोगो ने क़ानून अपने हाथ मे ले लिया है !

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

(दोनों सन्तरी भागते हुए आते हैं। कप्तान चित्रा की तरफ़ इशारा करके) ले चलो गाड़ी पर ...

चित्रा : (ज़ोर से नारा लगाती है) इंक़लाब ...

(नेपथ्य से जवाब आता है, 'ज़िन्दाबाद' — जो गूँजता जाता है।)

कप्तान : (चौंककर फटी-फटी सी आवाज़ में चीख़ पड़ता है) ये ... ये कौन लोग हैं ?

चित्रा : (मंच के मध्य में, दर्शकों की ओर आगे को बढ़ते हुए जब कि स्पॉट उसके चेहरे पर है, जिससे उसके सर के पीछे एक प्रभामंडल-सा बन रहा है) मैं भी नहीं जानती अविनाश . . शायद हवा ... शायद चट्टानें ... शायद दोनों के बीच पिसता हुआ आदमी ... हमारी पलटन के गुमनाम सिपाही ... चलो।

(सब जाते हैं। पर्दा गिरता है।)

□

... लाओ, हाज़िर करो मुजरिम को ... हम उन्हें मौत की सज़ा सुनायेंगे ... और हाथ के हाथ ले जाकर गोली भी मार दी, छुट्टी ... लेकिन चित्रा, यह किसी सभ्य देश का तरीक़ा नहीं है और न कोई हुकूमत ...

चित्रा : (बात काटते हुए) चूल्हे में जाय ऐसी सभ्यता और भाड़ में जाय ऐसी हुकूमत जिसमें बेगुनाहों को सज़ा मिलती है और गुनहगार मूँछों पर ताव देते घूमते हैं ... अब एक दिन नहीं चल सकती यह चीज़ ... चढ़ ली काठ की हाँडी जितने दिन चढ़नी थी ... क़ानून अगर अंधा है, उसके हाथ अगर लुंज हो गये हैं तो इंसाफ़ की कमान अपने हाथ में ले लेने के सिवा चारा भी क्या है ?

कप्तान : हम काटकर गिरा देंगे वो हाथ ...

चित्रा : गिरा दो ... नये हाथ उठ खड़े होंगे ... क्योंकि तड़प सच्ची है ... तुम आन्दोलन को मार सकते हो अवि· नाश, भूडोल को नहीं मार सकते ... ये भूडोल है जो तुम देख रहे हो ... अच्छी तरह देखो इसको, पहचानो इसको, बार-बार इससे तुम्हारा सामना होगा, जब तक कायाकल्प नहीं होता इस बंजर धरती का, अपने ही ख़ून में लिथड़ी हुई इस अंधी-कुबड़ी शताब्दी का, इस बुड्ढे देश का, जिसकी हर साँस उल्टी चल रही है, जो शायद अब मरकर ही ठीक होगी ...

कप्तान : हो गया, चित्रा ... काफ़ी हो गया ... देख लिया मैंने तुम्हारा भूडोल, जितना कुछ देखना था ... अब चलो, तुम ज़रा पुलिस का भूडोल देखो ... दुनिया घूमती

[illegible] घूमेगी ।

पात्र-परिचय

मुसाफ़िर १	:	बुड्ढा आदमी, जिसका चश्मा खो गया है।
मुसाफ़िर २	:	जिसके पाजामे में एक टिड्डा घुस गया है।
एक अंधा भिखारी	:	उम्र पचीस-तीस।
एक मलहमवाला	:	उम्र बीस-बाइस।
एक औरत	:	जो जल्दी ही बच्चा जननेवाली है।
जानकी	:	एक दाई।
एक नव दंपती	:	जिनके नौ बच्चे हैं। पति ३०, पत्नी २५।
मुसाफ़िर ३	:	एक नौजवान, जो अंधेरे में बैठा मजे से अपना ट्रांजिस्टर बजा रहा है।
मुसाफ़िर ४	:	दूसरा नौजवान, जो शबनम चन्दा की जादुई प्रेम कहानी में सिर से पैर तक डूबा हुआ है।
मुसाफ़िर ५	:	एक आदमी, जो सबसे अलग एक कोने में बैठा सिगरेट पी रहा है।
एक सुराही	:	जो लुढ़क गयी है।
मुसाफ़िर ६	:	एक महान् दार्शनिक, जैसे शायद रेलवेवालों की तरफ़ से हर डिब्बे में एक-एक अदद बिठा दिये जाते हैं।
रमेसर और हरिहर	:	दो मुक़दमेबाज मुसाफ़िर।
एक बच्चा	:	जिसके लिए अब जब्त करना मुश्किल हो रहा है लेकिन इस अँधेरे डिब्बे से निकलकर उस

प्रथम प्रस्तुति / कल्चरल सोसायटी ऑफ राजस्थान,
जयपुर, ३० दिसंबर १९७२।
निर्देशक / भारत रत्न भार्गव
एच० पी० सक्सेना

दृश्य : १

(रेल का तीसरे दर्जे का डिब्बा। रात का समय है। अभी-अभी बिजली चली गयी है और डिब्बे में पूरपूर अंधेरा है। एक-दो मिनट के इस अंधेरे के बाद, प्लेटफार्म से आती हुई मद्धिम-सी रोशनी से डिब्बे में एक नीम-अंधेरे की कैफियत पैदा हो जाती है। डिब्बे में किलबिल और मच रहा है।)

मु० ८ : हे राम, ये क्या हुआ !

मु० ६ : बिजली चली गयी, और क्या हुआ —

मु० ८ : इतना तो मैं भी देख रहा हूँ —

मु० ६ : तो फिर पूछते क्यों हो ?

मु० ८ : ये देखने को कि सब तुम्हारे ही जैसे टर्रे और बद-जबान हैं या कोई ढङ्ग का आदमी भी है यहाँ !

मु० ६ : जबान संभालकर बात करो —

मु० ८ : नहीं चिमटी से पकड़कर खींच लूँगा —

मु० ५ : — चिमटी दूँ ? अच्छी स्टेनलेस की है ...

संजय : — बंद भी करो यार ... सूत न कपास कोरिये से लट्ठम लट्ठा ... बुरा भी नहीं लगता तुमको, अंधेरे में बैठे झगड़ रहे हो ...

मु० ६ : और करें भी क्या इस अंधेरे में ?

मु० ८ : क्या बात कही है तुमने प्यारे ... झगड़ने का असल मजा अंधेरे में है ... कोई किसी का मुँह भी नहीं नोच

आज भी

अँधेरी कोठरी में जाकर बैठे पर लगता है
इसलिए वह रह-रहकर दिन के तंतु को उघा
कर उठता है।

मुसाफ़िर ७ : इस बच्चे का बाप।

गगन : एक जवान आदमी, जो ज़िन्दगी की उमस
में निकलकर प्लेटफ़ार्म पर आता है जहाँ रौनक
है और भीड़ है, जिसमें ही कहीं कोई ज़िन्दगी-
वाला भी होगा।

भोली : जिसका दिल बहुत मज़बूत है।

मुसाफ़िर ८

मुसाफ़िर ९

मुसाफ़िर १०

स्टेशन मास्टर

टिकट कलेक्टर

पुलिसमैन

फेरीवाले

मिस्त्री

कैंटीनवाला

और भी मुसाफ़िर

समय : यही। स्थान : यही।

दृश्य : १

(रेल का तीसरे दर्जे का डिब्बा। रात का समय अभी-अभी बिजली चली गयी है और डिब्बे में घुप्प अँधेरा है। एक-दो मिनट के इस अँधेरे के बाद, प्लेटफ़ार्म से हुई मद्धिम-सी रोशनी से डिब्बे में एक नीम-अँधेरे की सी पैदा हो जाती है। डिब्बे में किलबिल है।)

मु० ८ : हे राम, ये क्या हुआ !

मु० ६ : बिजली चली गयी, और क्या हुआ।

मु० ८ : इतना तो मैं भी देख रहा हूं —

मु० ६ : तो फिर पूछते क्यों हो ?

मु० ८ : ये देखने को कि सब तुम्हारे ही

गरमा ...

कराहने की आवाज)

[illegible] : ये कराह कौन रहा है ?

मु० ३ : होगा कोई ... आने दो मतलब ?

[illegible] : कोई औरत मालूम होती है ...

(प्लेटफार्म से आती हुई फेरीवाले की आवाज, दू ... गरम दूध ...)

मु० ४ : सारा मज़ा गुड़गोबर कर दिया साले ने ... अभी हेंड-होरोइन का मिलाप होनेवाला था ...

मु० ३ : तब तो ठीक ही अंधेरा हुआ — हाँ, आप जरा ताक-झांक ...

मु० ४ : (खिसियाकर) चुप रहिए । आप से कौन बोल रहा है ।

मु० ३ : तब किससे बोल रहे हैं ?

मु० ४ : हवा से —

मु० ३ : तो फिर मैं भी हवा से बोल रहा हूँ —

मु० ४ : (मुँह चिढ़ाने के स्वर में) हवा से बोल रहे हैं ! हवा क्या आपके बाप की है ?

मु० ३ : नहीं तो क्या आपके बाप की है ?

मु० ४ : होश में रहकर बात कीजिए, नहीं तो घूंसा मारूँगा कि आपकी नाक टूट जायेगी !

मु० ३ : साले ! बाप न दादे सात पुश्त हरामजादे ! मुझ पर हाथ उठायेगा ! मैं तुझको उठाकर गाड़ी के बाहर फेंक दूँगा !

[illegible] : वाह पट्ठे ! आदमी जबर है ! नहले पर दहला !

मु० ४ : खामोश ! क्या बडबड लगा रक्खी है ? ये कोई नौटंकी नही हो रही है !

मु० ७ : नौटंकी कौन कहता है यार, दंगल !

मु० ३ : हमारा मामला है हमको निपट लेने दो।

मु० ५ : तो हो जाय दो-दो हाथ, हम भी जरा तमाशा देखे।

मु० ७ : रोशनी कहाँ है जो देखोगे ?

मु० ५ : तो दंगल ही कौन अभी हुआ जाता है ? अभी तो दोनो पहलवान अखाड़े की मिट्टी लेकर हाथ मिला रहे है !

मु० ४ : बड़ा चबर-चबर कर रहे हो । बताये देता हूँ, एकाध हाथ पड़ गया तो पानी भी नही माँगोगे !

मु० ७ : काश जो इस वक्त बत्ती आ जाती तो हम भी देखते यह कौन भीम की औलाद है ! लगता है किसी अच्छे से पाला नही पड़ा कभी !

मु० ६ : अँधेरे मे लगता है गर्मी और ज्यादा चढ़ जाती है !

मु० २ : हाय हाय, मेरे पाजामे मे जाने क्या घुस गया है !
(ट्रांजिस्टर जोर-शोर से बज रहा है ।)

मु० ५ : शेर होगा ... सँभालकर हाथ डालना ...

से) शेर यहाँ कहाँ !

दिल्लगी सूझी है, यहाँ मेरी जान पर

हो।

मु० २ : कुछ सुनायी नहीं पड़ता। हँसने की इसमें क्या बात है ?

मु० ४ : सुनायी कैसे पड़े। इनका ये रहँट जो चल रहा है लगातार !

मु० ३ : ये रहँट है ? इतना भी पता नहीं आपको ... बाबूजी, इसको ट्रान्सिस्टर कहते हैं। चार सौ का खरीदा है।

मु० ४ : चार सौ नहीं आपने इसको चार हज़ार में खरीदा हो, उससे क्या ...

मु० ३ : *आँख निकल आयेगी बाबू, जब चार सौ गिनना पड़ेगा।*

मु० ४ : आँख तो पीछे निकलगी, अभी तो कान पक गये तुम्हारी ये चूँ-चूँ सुनते-सुनते !

मु० २ : (आवाज़ ऊँची करके पूरे डिब्बे को संबोधित करते हुए) किसी के पास टार्चबत्ती तो नहीं है भाई ?

मु० ४ : क्यों, शेर मारोगे ?

मु० २ : अरे यार, पहले देखूँ तो, शेर है कि झींगुर है कि टिड्डा है ... साला अंदर ही अंदर उछलकूद मचाये है ...

मु० ६ : पाजामा उतारकर पलट दीजिए ...

मु० २ : हे राम, कैसे-कैसे लोगों का साथ हो जाता है सफर में ! मैं कर रहा हूँ टार्च दे दीजिए, अगर किसी भाई के पास हो, और आप कह रहे हैं पाजामा उतार दो !

मु० ६ : तो क्या बुरा कह रहा हूँ ? पाजामे के अंदर कीड़ा घुस गया हो तो पाजामा पलटना ही पड़ेगा ... दूसरा

मु० ६ : पता नही आप क्यो इतना डरते हैं पाजामा उतारने से ! और सो भी इस अंधेरे मे जहाँ हाथ को हाथ नही सूझता ।

मु० २ : और जो इसी बीच कही रोशनी आ गयी ?

मु० ६ : तो क्या, धोती के नीचे सब नगे होते हैं । लेकिन आप फिक्र न करिए, रोशनी अब कल सवेरे सूरज के साथ ही आयेगी ।

मु० २ : कैसे मालूम ?

मु० ६ : गार्डबाबू से अभी टेलीफून पर मेरी बात हुई थी ... वह मेरे समधी के साढू के बहनोई के भतीजे हैं ...

मु० २ : अच्छा ! ! ! ! ! ! ! तब तो आप बहुत ही वेल-कनेक्टेड हैं जनाब, किसी दिन आबकारी के दरोगा से लेकर प्राइम मिनिस्टर तक बन सकते हैं । लेकिन यह तो बताइए, टेलीफून यहाँ कहाँ से आया ?

मु० ६ : (झुँझलाकर) वहीं से, जहाँ से वो टिड्डा घुस आया आपके पाजामे में ... हाँ नही तो ! कानून करते हैं हर बात में । मैंने तो आपको दोस्त समझकर एक अच्छी सलाह दी, पाजामा उतारकर पलट लो, टिड्डा आप निकल जायेगा, और आप हैं कि लगे जिरह करने । जरूर आप पेशे से वकील होंगे और सो भी किसी नायब तहसीलदार की कचहरी मे ...

मु० २ : मैं मौजा लखनपुर का रहनेवाला हूँ —

मु० ६ : आप लखनपुर नही रामपुर के रहनेवाले हो, आपकी कठहुज्जती पुकार-पुकारकर कह रही है कि ये आदमी किसी सड़ी हुई कचहरी का घसा हुआ वकील है ।

मु० २ : देखिए बाबू साहब, ठीक नहीं होगा ... बात मुझे मालूम नहीं ...

मु० ६ : बेशक नहीं जानता ... इसके सिवा कि एक बिच्छू आपके पाजामे में घुसा बैठा है और आपके किये-धरे कुछ नहीं बन रहा है।

मु० २ : मैंने पकड़ रखा है पाजामे को ! (ट्रांजिस्टर ज़ोर-शोर से बज रहा है।)

मु० १ : अच्छा किया। पकड़े बैठे रहो। (लोग हंस पड़ते हैं।)

मु० २ : लोग हंस क्यों रहे हैं ?

मु० ५ : हंसें न तो क्या करें ... कितना अंधेरा है !

मु० ६ : और आप हैं कि इस अंधेरे में भी पाजामा उतारते आपकी नानी मरती है। अब तक तो दस बार पाजामा उतारकर झाड़ चुका होता। जाने कैसे-कैसे लोगों से पाला पड़ता है सफ़र में ! अभी कहीं काट लेगा किसी नाजुक जगह में, तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। (लोग हंस पड़ते हैं। तभी मलहमवाला आता है। उसके साथ ही अंधा भिखारी चुपचाप आकर बैठ जाता है।)

मलहम० : मलहम ... मलहम ... बाबा भैरवनाथ का मलहम ... कैलाश - मानसरोवर की ऐसी-ऐसी जड़ी-बूटियों से तैयार किया हुआ जिनका नाम भी दुनिया नहीं जानती ... मलहम ... मलहम ... मलहम ... सिद्ध योगी बाबा भैरवनाथ का चमत्कारी मलहम ! कैसा भी दर्द हो, कैसी भी जलन हो, टीस हो, चुभन हो, [illegible] ने काटा हो, मच्छर ने काटा हो, साँप ने

काटा हो, बिच्छू ने काटा हो ...

मु० ४ : टिड्डे ने काटा हो ... (लोग हँस पड़ते हैं जिससे मलहमवाला सिटपिटा जाता है और दस-पाँच सेकंड चुप खड़ा रहता है कि जैसे भूल गया हो आगे क्या कहना है ।)

मु० ५ : बीच में मत टोको भाई, बेचारा अपनी स्पीच भूल जाता है ... बोलो बोलो, बाबा भैरवनाथ, डरो मत, सब अपने ही लोग हैं और सबको कोई न कोई दर्द है, कोई न कोई जलन है, टीस है, चुभन है ... (इससे मलहमवाले को कुछ ढाढस भी होता है और आगे के लिए क्यू भी मिल जाता है — और वह फिर बोलना शुरू करता है ।)

मलहम० : हाँ तो साहेबान, मक्खी ने काटा हो, मच्छर ने काटा हो, साँप ने काटा हो, बिच्छू ने काटा हो, हड्डे ने काटा हो, ततैया ने काटा हो ...

मु० ६ : लीडर ने काटा हो, प्लीडर ने काटा हो ... (लोग हँस पड़ते हैं ।)

मलहम० : (अनसुना करते हुए) दो बार लगाने से आराम ... फोड़ा हो, फुंसी हो, सूजन हो, मोच हो, जल गया हो, कट गया हो, पैरों में बिवाई फटी हो, दो बार लगाइए, शर्तिया आराम ...

मु० ५ : और जो कोई तीन बार लगाना चाहे ?

मलहम० : तीन बार का काम नहीं । ये बाबा भैरवनाथ का मलहम है, जादू का मलहम ... सिर दुखता हो, माथे पर रगड़ लीजिए ... पेट गड़ता हो नाभी पर मल लीजिए ... मितली आती हो, पानी में घोल कर

धी आइए ... सर्दी हो, नाक के दोनों तरफ़ धीरे-धीरे इसी मलहम की मालिश कीजिए ... सीने में जकड़न हो तो उस पर अच्छी तरह मलहम का लेप लगाकर गरम पानी से सेंकिए, सब बलग़म बाहर आ जायेगा और जकड़न ग़ायब ...

मु० १ : जैसे एलेक्शन के बाद नेता। (सब लोग हँसते हैं। मलहमवाला और भी उत्साह से बोलने लगता है।)

मलहम० : आँखें जलती हों, करकराती हों, रोहे हों, बिलनी हो इसी मलहम को सुरमे की तरह दो बार सलाई से फेर लीजिए ... कान बहते हों, टपकते हों, मलहम को बकरी के दूध में घोलकर चार-चार बूँद दो-दो घंटे पर कान में टपकाइए, कान का टपकना चुटकी बजाते हवा। (चुटकी बजाता है।)

(अचानक अंधा भिखारी उठकर खंजड़ी पर गाना शुरू कर देता है। मलहमवाला पहले सकपकाता है, फिर मना करता है। भिखारी ध्यान नहीं देता। मलहमवाला हाथ से रोकता है।)

अंधा० : (आवाज़ चढ़ाकर) हटो जी, अब हमारी बारी है ...

मलहम० : लेकिन अभी बात कहाँ ख़तम हुई ? (भिखारी फिर गाना शुरू कर देता है।) सुना नहीं तुमने ?

अंधा० : हमारा कपार दुख गया बैठे-बैठे, इनकी बात ही ख़तम नहीं हुई ! कब तक कोई सबर करे। सबको अपना धंधा करना है। पीछे झंझट न हो, इसी मारे डिब्बे में घुसने से पहले सब कुछ तय कर लिया था। अब

चक्करबाजी की बात करोगे तो ठीक न होगा।

मलहम० : चुप रह! बड़ा आया हुकुम चलानेवाला, जैसे लाट हो कहीं का!

अंधा० : कहे देता हूँ मेरे मुँह न लगो नहीं बुरा होगा...

(दोनों झगड़ने-सा लगते हैं।)

मलहम० : कैसा बढ़-बढ़कर बोल रहा है! एक रहपट दूँगा, इधर का मुँह उधर हो जायेगा!

मु० ६ : (दोनों को अलग करते हुए) फिर अपना मलहम लगा देना, सब ठीक हो जायेगा!

(लोग हँसते हैं।)

अंधा० : इसके मलहम की ऐसी-तैसी। साला मलहम लिये फिरता है। कोई बीमारी न बची जिसका इलाज इसके मलहम के पास नहीं। कहीं रगड़ लो, कहीं घिस लो, कहीं मल लो। बड़ा आया मलहमवाला!

मलहम० : भाइयो, इसकी बातों मे मत आइए — ये मेरा जनम-जनम का बैरी है —

अंधा० : भाइयो और बहनो, मैं जनम का अंधा, आप ही बताइए, मैं कैसे किसी का बैरी हो सकता हूँ?

मलहम० : भाइयो, ये कोई अंधा-वंधा नहीं, बना हुआ अंधा है... आज ही सबेरे बैठा अपने कपड़ों से जूँ निकाल रहा था — मैंने अपनी आँख से देखा।

अंधा० : अपनी आँख से नहीं तो क्या मेरी फूटी आँख से देखोगे! (एकाएक ज़ोर से रो पड़ता है, जैसे मर्म पर चोट लगी हो। फिर रोते रोते) लेकिन मेरे आँख नहीं तो क्या मैं अपने कपड़ों से जूँ भी न निकालूँ? बात है — अपने कपड़े की जूँ खुद ही निकालनी

पड़ती है, आंख हो चाहे न हो —

मलहम० : सवाल जूं निकालने का नहीं है —

अंधा० : तो फिर काहे का सवाल है ?

मलहम० : तुम्हारा जू है, दिन-रात बैठे निकालते रहो, किसी के बाप का क्या जाता है।

अंधा० : फिर मैं अपना जू निकालता हूं तो तुम्हारी छाती क्यों फटती है ?

मु० १ : देखो, गाली-गुफ्ता मत करो —

(भिखारी के रोने में अवसर के अनुकूल और तेजी आ जाती है।)

अंधा० : (सुबकते हुए) सब लोग मुझी को कहते हैं। इस हरामी के बच्चे को कोई कुछ नहीं —

मलहम० : जबान सँभालकर बोल नहीं अभी रेलगाड़ी के बाहर ढकेल दूंगा।

मु० ६ : मलहम तो अपने पास हई ...

अंधा० : इसका मलहम ? लो सुनो। पाव भर हल्दी लेकर खूब महीन पीस लो। दो तोला काली मिर्च लेकर उसको भी खूब महीन पीस लो। उसी तरह अठन्नी भर मुर्दासख और छटांक भर गुड़ लेकर उनको भी खूब महीन पीस लो। फिर हँड़िया भर पीली मिट्टी रात भर काफ़ी से पानी में भीगने दो। सबेरे जब उसकी अच्छी लुग्दी तैयार हो जाय तो उसमें ये बाक़ी मसाला मिलाकर अच्छी तरह फेंट दो, कैलाश-मानसरोवर के बाबा भैरवनाथ के जादुई मलहम की पांच सौ डिबियां तैयार। दाम एक रुपया की डिबिया — और लागत

(मलहमवाला, जो इस बीच अपने को झगड़े के लिए तैयार करता रहा है, आखिरकार भिखारी को एक धौल लगा देता है और फिर दोनो आपस मे गुंथ जाते हैं। ट्राजिस्टर खूब जोर-शोर से बजने लगता है। इस समय उस पर जुझारू संगीत आ रहा है।)

मलहम० : पूछिए इस शैतान की औलाद से इसने ये सब देखा कैसे जब इसके आँख ही नहीं —

(इन दोनो का गुत्थमगुत्था चलता रहता है कि किसी का पैर दब जाता है।)

रमेसर : उफ, ये कौन साला मेरे पैर पर चढ बैठा! लड़ना हो तो तो तुम दोनो बाहर जाकर लड़ो। अब जो कोई मुझ से धुला भी तो वो दुहत्तड़ दूँगा खीचकर कि छछूँदर की तरह नाचने लगोगे!

अंधा० : चल साले, बाहर चलकर तेरी चुन्दी करता हूँ... वहाँ कौन मैं अंधा रहूँगा! आज तूने मेरे पेट पर जो लात मारी है उसका बदला न चुकाया तो मैं अपने बाप का जना नही...

मलहम० : चल हरामजादे, तूने भी तो मेरा कबाड़ा कर दिया। मेरी एक डिबिया नही बिकी आज, जब कि और दिन दस-दस बिकती थी... चल बाहर, देख मैं आज तेरी कैसी मरम्मत करता हूँ!

(दोनो धक्कामुक्की करते बाहर दरवाजे की ओर बढ़ते हैं।)

यु० १ : चश्मा! चश्मा! मेरा चश्मा बचाकर!

(तभी उधर से फिर [illegible] त के कराहने की [illegible] मे [illegible])

मलहम० : तुम्हारे चश्मे को कौन क्या कर रहा है ! बेकार हुल्लड़ मचाते हो !

मु० १ : अभी फूट जायेगा तो ?

अधा० : कोई पागल बुड्ढा मालूम होता है ! अरे बाबा, मार-पीट तो हम दोनों की हो रही है, तुम्हारे चश्मे से हमको क्या लेना-देना ! बैठे रहो एक किनारे अपनी नाक पर सँभाले ...

मु० १ : यही तो बात है ... चश्मा अभी गिर गया यहीं कहीं ... तुम्हारे पैर के नीचे आ गया तो बस ... और किसी तरफ से निकल जाओ।

मलहम० : किधर से ?

मु० १ : (खड़े होकर रास्ता रोकते हुए) चाहे जहाँ से ... इधर से तो मैं आने नहीं दूँगा .. पचीस रुपये का चश्मा है। मेरे कानूनगो बेटे ने बनवाकर दिया है। फूट गया तो कौन जिम्मेदार होगा ? तुम बनवा दोगे दूसरा ? (पल दो पल का मौन। उधर से कोई जवाब न पाकर) फिर क्या बात करते हो ! जाओ जहाँ से आना हो।

अधा० : आप भी खूब बात करते हैं। कहाँ से जायें ? किसकी लाशों पर से ! वाह रे, रस्ते में अड़ंगा लगाकर बैठे हैं — अब कोई इधर से जाय भी नहीं !

मु० १ : अब क्या करूँ, चश्मा गिर गया तो उसको टूटने से बचाऊँ भी नहीं ?

मलहम० : चश्मा गिर गया तो उसको उठाइए।

मु० १ : कैसे उठाऊँ ? चश्मे के बिना तो मैं अंधा हो रहा हूँ, ऊपर से बल्कि [illegible] भैया, तुम्हारे

बाप की उम्र का हूँ ...

रहम० : मेरा बाप ऐसा काम करता तो मैं चार थप्पड़ लगाता उसके ! किस इत्मीनान से चश्मा गिराये बैठे हैं कि जैसे अपने घर में बैठे हो, ढूंढ़ लेंगे आगे-पीछे ! कानूनगो बेटे ने पता नहीं किस-किस का गला काटकर यह चश्मा बनवाया होगा ! क्यों भाई, किसी के पास माचिस तो नहीं है ?

(कहीं से कोई जवाब नहीं आता । एक सन्नाटा, कि जैसे सबको साँप सूँघ गया हो ।)

अरे कोई कुछ बोलता क्यों नहीं ... कि सब लोग चल बसे ! इतने बड़े डिब्बे में किसी के पास एक माचिस नहीं ?

हरिहर : दे क्यों नहीं देते रमेसर ?

रमेसर : तुम्हीं क्यों नहीं दे देते ?

हरिहर : क्यों, तुम्हारी माचिस क्या सेंतकर रखने के लिए है ?

रमेसर : नहीं, नहीं । तुम्हारी माचिस में तो हीरे-मोती जड़े हैं !

हरिहर : छोड़ो भी । देख लिया कितनी कंजूस तबीयत के आदमी हो !

रमेसर : तुम हो कंजूस !

हरिहर : तुम कंजूस । मूंजी कहीं के !

रमेसर : बहुत देखा है तुझे ! साला एक-एक पैसा दाँत से पकड़ता है !

रहम० : गजब हो गया यार, माचिस की एक तीली के लिए ऐसी झौंझौं कर रहे हो !

रमेसर : झौंझौं की बात नहीं, ये साला हरियवा हमेशा ऐसा

ही करता है। मीठी-मीठी बात करके हमसे पैसा खरच करवा देता है और आप चुपके से निचुक जाता है! आज हम दोनो की तारीख लगी थी एक ही मुकदमे में। दिन भर कचहरी में सिर फोड़ते रहे। आखिर हुआ वही जो आज दो बरस से हो रहा है। दूसरे फरीक ने पांच रुपैया खरच करके फिर तारीख बढ़वा ली। लेकिन दिन भर हू हू हू हू फिरना तो पड़ा ही। पूछिए इस कमबख्त से इसने दिन में कितने प्याली चाय पी और कितने पान खाये, लेकिन अपनी गांठ का पैसा एक बार भी खरच किया?

हरिहर : झूठ मत बालो रमेसर! हमने कित्तो बार कहा, हमे पैसा देने दो। तुमने देने दिया?

रमेसर : हां हां! खलीते में हाथ तो बहुत बार डाला बेटा, पर वहां से निकला कभी कुछ नही!

हरिहर : बकवास मत करो। ऐसे कह रहे हो जैसे हमने कभी तुम पर खरच ही नही किया!

रमेसर : क्यों नही, क्यो नही! लाखो लुटा दिये तुमने!

हरिहर : और तुम तो हम पर खरच करके कंगाल हो गये! छी छी, मुझे क्या पता था तुम इतनी ओछी तबीयत के आदमी हो!

(दोनो अपनी जगह से उठकर झगड़ने लगते हैं।)

रमेसर : ओछी तबीयत का तू है!

हरिहर : तू है, तू!

(मलहमवाला बीच-बचाव करता है।)

मलहम॰ : छोड़ो यार यह तो तुम दोनों का [illegible] का झगड़ा है, समझते र[illegible] [illegible] है। [illegible]

बेचारे का काम का अटका है ...

रमेश्वर : काम तो सभी का अटका है ... माचिस क्या कोकट में आती है ?

मसहूद० : नहीं, एक करोड़ में आती है। रखे रहो अपनी छाती से लगाए। जाने कहाँ-कहाँ के मक्खीचूस ... (डिब्बे के दूसरे छोर पर एक आदमी की जलती सिगरेट देखकर) ओ सिगरेटवाले बाबू साहब, आप ही माचिस दे दीजिए ...

यु० १ : एक बार नहीं सौ बार मैं आपको माचिस दूँगा ... आदमी-ही आदमी के काम आता है ... लानत है उन लोगों पर जो इसानियत से इतने गिर गये हैं कि जरूरत पड़ने पर किसी को माचिस की एक तीली भी नहीं दे सकते ... ऐसे लोगों को पकड़कर काँजीहौस में बंद कर देना चाहिए ... ये लोग आदमी नहीं जानवर हैं ... क्या हक है इन्हें शरीफ लोगों की संगत में बैठने का जब कि ये माचिस जैसी दो कौड़ी की चीज निकाल-कर नहीं दे सकते एक लाचार बुड्ढे आदमी को जिसका चश्मा इसी अँधेरी कालकोठरी में कहीं गिर गया है ... लानत है, हजार बार लानत है। हे भगवान, डूब क्यों नहीं मरते ऐसे लोग चुल्लू भर पानी में। एक जमाना था कि आदमी जरूरत पड़ने पर दूसरे आदमी के लिए खून तक बहाने में आगा-पीछा न करता था, और एक जमाना ये है कि माचिस की एक तीली निकालने लोगों की छाती फटती है ! इसी का नाम कलजुग है जनाब, घोर कलजुग ! धत्तेरे की, मुँह का मजा खराब कर दिया कमबख्तों ने — (आवाज़ चढ़ाकर) दे दो

जी, रमेसर-या-जो-भी-नाम-है-तुम्हारा, एक दो तीन जितनी तीली लगे, दे दो। ये लो दस पैसा हमसे ले लो।

रमेसर : हम कोई भिखमगे हैं जो दस पैसा दिखा रहे हो हमको !

मु० ५ : नहीं भैया, तुम तो बड़े धन्नासेठ हो, चाहो तो खड़े-खड़े टाटा-बिड़ला को खरीद लो। जभी तो माचिस की एक-एक तीली को दांत से पकड़ते हो !

रमेसर : इतना ही दरद है बुड्ढे का तो आप अपनी डिबिया क्यों नहीं दे देते ?

मु० ५ : दे ही देता मगर क्या बताऊँ, मेरी डिबिया अभी-अभी खलास हो गयी ...

मु० ६ : जभी !

मु० ५ : मतलब ?

मु० ६ : कुछ नहीं ... शास्त्रों में लिखा है कि डिबिया खलास हो तो उसकी पुरौती भाषण से करनी चाहिए !

(लोग हंसते हैं।)

रमेसर : साला ! दूसरे की पूंजी से ब्योपार करने चला है ! ये सब रंगबाजी किसी और को दिखाना, हम उड़ती चिड़िया पहचानते हैं। हुकुम चला दिया, माचिस दे दो, जैसे इनके बाप की माचिस है !

मु० ५ : देखो, जबान सँभालकर बात करो ... ज्यादा बाप-महतारी करोगे तो वो झांपड़ दूंगा खींचकर ...

(रमेसर जो काफी तगड़ा आदमी है, कुद्ध भैंसे की तरह ज़ोर-ज़ोर से साँस लेता हुआ अपनी जगह से उठ — ... ...या के अनुमान से अंधेरे में ही, दो-

एक लोगों से टकराता हुआ उस सिगरेटवाले आदमी के पास पहुंच जाता है और माचिस जलाकर उसका मुंह देखता है ।)

रमेसर : क्यों बे चमगादड, यही मुंह लेकर तू मुझे डांटेगा !

(एक जन्नाटेदार तमाचा उसको रसीद करता है ।)

मु० ३ : अभी, यह कैसी आवाज हुई ?

मु० ४ : (जैसे स्कूली बच्चे पढ़ते हैं) लगता है किसी ने किसी को जोर का एक तमाचा मारा ...

मु० ६ : अब कुछ बात हुई, वर्ना जाने कितनी देर से बस वही तू तू मैं मैं । कान पक गये थे सुनते-सुनते । कौमें वही जिन्दा रहती हैं जिनमें मरने-मारने का कसबल होता है ।

मु० ८ : बात क्या है, अब तक तो उधर का जवाब भी सन-सनाता हुआ आ जाना चाहिए था, तड़ाक ...

मु० ६ : (आकाशभाषित) जरूर कुछ देर हो रही है ... दस तक की गिनती गिनता हूं और तब भी अगर कुछ न हुआ तो समझ लूंगा कि जरूर साला कोई पढ़ा-लिखा सफेदपोश आदमी है जिसकी रगों में खून नहीं पानी बहता है !

(तभी जैसे इस दार्शनिक के मन की बात को स्वर देते हुए एक कोई और आदमी गिनती गिनना शुरू करता है)

मोहन : एक-दो-तीन-चार-पांच-छै-सात-आठ-नौ ...(पल दो पल का विराम)

मु० ६ : (जवाब तलब करने के स्वर में) नौ पर ही

क्यों रुक गये जी ? दस तक की गिनती नहीं आती क्या ?

मोहन : गिनती तो मुझे शंख-महाशंख-इपोरशंख तक की आती है लेकिन बच्चे तो अभी कुल नौ हैं ...

मु० ६ : बच्चे ?

मोहन : हाँ, मेरे बच्चे, जिनकी मैं गिनती कर रहा था ...

मु० ६ : ओ ! ! ! ! मैं समझा ...

मोहन : क्या समझे ?

मु० ६ : कुछ नहीं ...

मोहन : कुछ कैसे नहीं ... जरूर आपने कुछ उल्टा-पुल्टा समझ लिया ! अपने दिमाग की दवा कीजिए। हम लोग नवदपती हैं।

मु० ५ : ये नवदपती क्या होता है भाई ?

मोहन : नवदपती उन मियाँ-बीवी को कहते हैं जिनके नौ बच्चे होते हैं ?

मु० ५ : अच्छा ! ! ! और अगर किसी के सौ बच्चे हों ?

मोहन : तो वह सौदपती ... (अन्य मुसाफिर दिलचस्पी से सुनते हैं। कुछ कानाफूसी।) लेकिन अब कहाँ किसके सौ बच्चे होते हैं। गली-गली मे तो लाल तिकोन बैठा दिया गया जिसे देखकर ही हौसला पस्त हो जाता है !

मु० ५ : पस्त हौसले का जब ये कारनामा है ...

मोहन : भई, सबको अपनी ताकत भर क़ौम की खिदमत करनी चाहिए ...

मु० ५ : क्यो नहीं, क्यों नहीं। बड़ा ऊँचा खयाल है आपका !

मोहन : आप ही बताइए, आदमी से बढ़कर है कोई दौलत

दुनिया में ?

मु० ५ : तो आपने कहा, लाओ अपने मुल्क को इसी दौलत से मालामाल कर दें ... क्या बात है ! जितनी तारीफ की जाय कम है !

(कुछ मुसाफ़िर बेवकूफ़ बनाने के अंदाज़ में वाह्-वाह् करते हैं ।)

मोहन : अजी, तारीफ़ की इसमें क्या बात है, ये तो क़ौम की खिदमत है, जो जिस तरह कर सके । मुझे कोई काम-धंधा नहीं मिला तो मैंने कहा, कुछ तो करो बेटा, जिस मुल्क का नमक खाया है, क्या उसका कुछ भी हक़ नहीं अदा करोगे ? लिहाजा आज दस बरस से अपना यही काम है । ऊधो के लेने में न माधो के देने में, जी जान से मुल्क की पैदावार बढ़ा रहा हूँ । (सब मुसाफ़िर ज़ोर-ज़ोर से वाह्-वाह् करने लगते हैं ।) कोई १५ अगस्त तब से खाली नहीं गया । एक दिन आगे न एक दिन पीछे, ठीक आज़ादी के दिन हम अपना नया तोहफ़ा लिये उसकी अगवानी में खड़े रहते हैं ! (कुछ मुसाफिर हल्के से हँसते हैं, कुछ जोर-शोर से वाह्-वाह् करते हैं ।)

मगहम० : क्या बात है । भाई लोगो, इस बात पर तालियाँ बजाओ । (सब ताली बजाते हैं ।)

मु० ५ : बहुत बड़ी बात है साहब ... अगर सभी लोगों के दिल में अपने देश के लिए ऐसा ही प्यार हो तो देश कहाँ से कहाँ पहुँच जाय !

मोहन : रोना और किस बात का है जनाब । यहाँ तो सबको अपनी-अपनी पड़ी है, देश गया भाड़ में । मगर भाई,

क्यों रुक गये जी ? दस तक की गिनती नहीं
आता ?

मोहन : गिनती तो मुझे शंख-महाशंख-डपोरशंख तक की है लेकिन बच्चे तो अभी कुल नौ हैं ...

मु० ६ : बच्चे ?

मोहन : हाँ, मेरे बच्चे, जिनकी मैं गिनती कर रहा था।

मु० ६ : ओ ो ो ! मैं समझा ...

मोहन : क्या समझे ?

मु० ६ : कुछ नहीं ..

मोहन : कुछ कैसे नहीं ... जरूर आपने कुछ उल्टा-पुल्टा समझ लिया ! अपने दिमाग़ की दवा कीजिए। हम नवदंपती हैं।

मु० ५ : ये नवदंपती क्या होता है भाई ?

मोहन : नवदंपती उन मियां-बीवी को कहते हैं जिनके नौ बच्चे होते हैं ?

मु० ५ : अच्छा ा ा ! और अगर किसी के सौ बच्चे हों ?

मोहन : तो वह सौदंपती ... (अन्य मुसाफिर दिलचस्पी से सुनते हैं। कुछ कानाफूसी।) लेकिन अब कहाँ किसी के सौ बच्चे होते हैं। गली-गली में तो लाल तिकोन बना दिया गया जिसे देखकर ही होसला .

नहीं दिया ? बड़ा अन्याय है !

मोहन : अजी उन्हें अपने गेहूँ-चावल, आलू-गोभी से ही फुर्सत नहीं आदमी को यहाँ कौन पूछता है। कहीं और होते तो आज दुनिया में हमारा नाम चमक रहा होता और घर बैठे वजीफा मिलता सो अलग ... मगर छोड़िए, आपकी इन ऊलजलूल बातों में जाने कितना वक्त निकल गया, फिर से हाज़िरी ले लूँ। दूसरे की अमानत ठहरी, रात-बिरात का सफर है, बत्ती गोल, चोर-उचक्कों की भी कुछ कमी नहीं ... एक। दो। तीन। चार। पाँच। छे। सात। आठ। नौ। ठीक है। सब मौजूद हैं।

मु० ५ : इन बच्चों को आपने कुछ नाम भी दिया है या बस इन्हीं गिनतियों से पुकारते हैं ?

मोहन : आप भी कैसी बात करते हैं। बड़े अच्छे-अच्छे नाम हैं इनके। बच्चो, अपना नाम बताओ। (बच्चे नाम बता चलते हैं। दिनेश। राजेश। रमेश। ब्रजेश। सुरेश। उमेश। महेश।)

मु० ५ : बाकी दो ?

मोहन : वो अभी छोटे हैं, कमलेश, अखिलेश।

मु० ५ : नामों का भी बड़ा अच्छा ढङ्ग पकड़ा है ——
सब कुछ बड़े कायदे में हो रहा है ... भ
के नाम आपको अब शायद और बहुत न

मोहन : आपकी बातें। ढेरों नाम मिलेंगे, कितने ...

मु० ५ : फिर क्या बात है, अपना काम चालू रखिए और भारत-माता की गोद भरते चले जाइए अपने ही जैसे बाँके सपूतों से !

अपना तो कुछ और ही ढङ्ग है। (पल दो पल क विराम) मैं इक्कीस का था और ये सोलह की ज हमारी शादी हुई। वो दिन था और आज का दि है, हमसे गंगाजली उठवा लीजिए जो इन दस बरस में एक दिन भी हमने अपने राष्ट्रीय कर्तव्य से जी चुराया हो! हमारे मुल्क को अगर हमारी यही खिद मत मंजूर है तो यही सही, हम पीछे नहीं रहेंगे।

मु० ५ : वाह, क्या निराला ढङ्ग है, जी खुश हो गया। मगर ये आप गिनती क्यों कर रहे थे उनकी ?

मोहन : इसलिए कि दूसरे की अमानत है ...

मु० ५ : दूसरे की अमानत ? अभी तो आपने कहा कि ये बच्चे आपके हैं ?

मोहन : (कुछ नाराज होते हुए) मेरे नहीं तो और किसके हैं जी। मगर भाई, अमानत तो क़ौम की है। मैं जब तक उनको रक्खे हूँ रक्खे हूँ, फिर तो क़ौम ही उनको खिलायेगी-पिलायेगी, काम से लगायेगी ... मैं उन्हें अपना कहूँ भी तो किस मुँह से ?

मु० ५ : बहुत सही फरमाते हैं आप। मैंने इस पहलू पर ग़ौर नहीं किया था।

मोहन : मैं तो साहब, इसी नजर से उनको देखता हूँ। हमने बच्चा पैदा कर दिया, अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने। हमको भी किसान ही समझिए एक तरह का, फ़सल उगाकर दे दी, ले जाये जिसको जहाँ ले जाना हो — राशनिंग करो चाहे ब्लैक करो, किसान को उससे क्या लेना-देना है।

मु० ५ : सरकार ने अब तक आपको कृषि-पंडित का टाइटिल

मोहन : अजी, अब आपसे क्या छिपाना है ... हम तो खुद यही चाहते हैं और इसी सिलसिले में अभी गुप्तकाशी केएक पहुँचे हुए बाबाजी से मिलकर आ रहे हैं। उन्होंने कुछ जड़ी-बूटियाँ दी हैं और दो-एक मतर भी बताये हैं। अब कुछ नतीजा सामने आये तो पता चले।

मु० ५ : उसकी चिन्ता मत कीजिए ... भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि हे अर्जुन, तुझे बस अपने कर्म का अधिकार है, पर मैं आपसे कहता हूँ कि आप जिस तरह जी-जान से देश की सेवा में लगे हैं, आपको जरूर इसका सुफल मिलेगा ...

(एक बच्चा बिलख-बिलखकर रोने लगता है।)

मु० १० : (चिढ़कर) लो, अब ये रोना-गाना भी शुरू हो गया। क्यों भाई, किसका बच्चा है ? चुप क्यों नहीं कराते ?

(कोई हाँस-हुंकार नहीं लेता और बच्चा उसी तरह बुक्का फाड़कर रोता रहता है।)

इसके माँ-बाप सब मिधार गये क्या ! कोई कुछ बोलता क्यों नहीं !

मु० ४ : अरे, उन्हीं नौ में से एक होगा।

मोहन : एक झापड़ दूँगा, मुँह सीधा हो जायगा ! जो जी में आया बक दिया ! होगा जिसका बच्चा होगा, मेरे बच्चों में से कोई नहीं है। सब यहीं मुझसे लगे बैठे हैं और सबके मुँह बद हैं ! घामड़ आदमी, मुँह बद करके कोई बच्चा कभी इस तरह रो सकता है कि लगता है अभी छत भहरा पड़ेगी !

लेकिन आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ ...

मोहन : कहिए, कहिए।

मु० ६ : आपकी रफ़्तार अभी ज़रा धीमी है!

मोहन : (गर्व से) आप भी कैसी बात करते हैं। बच्चे का हुई कोई साल ख़ाली नहीं गया ... हर पन्द्रह अग हमारे लिये और हमारे इस देश के लिए एक न सौगात लेकर आता है ...

मु० ५ : वह तो ठीक है लेकिन यह एक का पहाड़ा कब त पढ़िएगा, जो बच्चे भी नहीं पढ़ते। दस बरस स पहाड़ ढकेलते रहे और आपके मुतलिक़ नौ बच्चे हुए उधर आस्ट्रेलिया की एक औरत ने एक ही बार मे नौ बच्चे दिए —

मोहन : आप ठीक कहते हैं ... मैंने भी अखबार में देखा था...

मु० ५ : अखबार में देखा था! ये आपके लिए शर्म से डूब मरने की बात है। आपसे तो बकरियाँ भी अच्छी हैं ...चार-पाँच बच्चे देना तो एक मामूली बात है उनके लिए —

मोहन : मगर हम बकरी तो हैं नहीं —

मु० ६ : अजी लानत भेजिए, कहाँ बकरी और कहाँ आप! अभी तो और बुरा लगता है ...

मोहन : यह तो सब कुदरत का खेल है ...

मु० ५ : कुदरत-वुदरत कुछ नहीं, मेरे दोस्त, सब अपने हौसले की बात है ... आप का ध्यान ही नहीं गया इस चीज़ पर वर्ना अगर ज़्यादा नहीं दो-दो बच्चे भी एक साथ हुए होते तो इस वक्त आपके पास नौ दुनी अठारह बच्चे होते ... कि झूठ कहता हूँ?

रमेसर : तुम तो बस बच्चे पैदा करना जानते हो और पूरी एक बरात लेकर फोकट मे रेलगाडी का सफर करना !

मोहन : आप मेरी जान के पीछे क्यो पडे है ?

रमेसर : इसलिए कि तुम रेलवई की रोटी खाते हो और काम धेले भर का नही करते ।

मोहन : मैं रेलवई की रोटी नही खाता, अपने बाप की रोटी खाता हूँ ।

रमेसर : तुम्हारा बाप रेलवई की रोटी खाता है, इसलिए तुम भी रेलवई की रोटी खाते हो ।

मोहन : आप बेकार मुझसे हुज्जत कर रहे हैं । बिजली ठीक करानी हो तो खुद निकलकर जाइए, मैं किसी के बाप का नौकर नही हूँ ।

रमेसर : अच्छा तो फिर मरने के लिए तैयार हो जाओ । भाइयो और बहनो, अबमे एक मिनट के अदर आप लोग यहाँ पर एक लाश फडकती हुई देखेंगे ...

मु० ४ : अंधेरे मे क्या देखने को मिलेगा ... पहले रोशनी तो आ लेने दो ।

रमेसर : तो फिर ठीक है, भाइयो, अभी मैं इसको बख्श देता हूँ ... जाओ छोड दिया बच्चू, बडे किस्मतवाले हो, वर्ना अभी मैं तुम्हे मारकर यही बिछा देता ।

मु० ५ : हम तो तैयार बैठे थे ...

रमेसर : रा । । । म ना । । । म ...
(लोग हँस पडते हैं । फिर एक औरत की मोटी जैसी तेज चुभती हुई चीख ।)

जानकी : बूझो तो जानें ...

सजय : क्या बूझो तो जानें ?

मु० ३ : गलती हुई, न होगा आपका बच्चा, इतना नाराज क्यों होते हैं ?

मोहन : लोग झूठमूठ नाम क्यों धरते हैं ?

रमेसर : अजी कौन किसे नाम धरता है, आप तो बेकार हुलें से उखड़े जाते हैं।

मोहन : बात आपको नहीं कही गयी न, इसीलिए इतनी नसीहत कर रहे हैं।

रमेसर : मैं कौन होता हूँ नसीहत करनेवाला — और कौन साला किसी की नसीहत सुनता है !

मोहन : देखिए, गँवारों की तरह बात मत करिए, हम शरीफ़ लोग हैं।

रमेसर : घर में भूनी भाँग नहीं, नौ-नौ ठो बच्चे पैदा करके डाल दिये, बड़ा शरीफ़ बना फिरता है।

मोहन : अब देखिए, आप हद से गुज़रे जा रहे हैं, बुरा होगा !

रमेसर : अभी तो अपने उन नौ बच्चों के पोतड़े धोते बैठो, बेटा, जब पलटन जवान होगी तब ये धमकी देना ! अभी एक दुहत्तड़ मारूँगा तो काँखकर वहीं बैठ जाओगे ... जरा सी बात किसी ने कह दी तो आपके दिमाग़ का पारा चढ़ गया ... और चाहे टिकट भी न लिया होगा इतने सब कँचीपोटों का ...

मोहन : हम लोगों को पास मिलता है। मेरे बाप रेलवई में प्वाइन्ट्समैन हैं ...

मु० ४ : फिर तुम यहाँ क्या मुँह छिपाये बैठे हो, जाकर बिजली क्यों नहीं ठीक करवाते ?

मोहन : यह मेरा काम नहीं है। मैं क्या जानूँ बिजली कैसे ठीक होगी।

रमेसर : तुम तो बस बच्चे पैदा करना जानते हो और पूरी एक बरात लेकर फोकट में रेलगाड़ी का सफर करना।

मोहन : आप मेरी जान के पीछे क्यों पड़े हैं ?

रमेसर : इसलिए कि तुम रेलवई की रोटी खाते हो और काम धेले भर का नहीं करते।

मोहन : मैं रेलवई की रोटी नहीं खाता, अपने बाप की रोटी खाता हूँ।

रमेसर : तुम्हारा बाप रेलवई की रोटी खाता है, इसलिए तुम भी रेलवई की रोटी खाते हो।

मोहन : आप बेकार मुझसे हुज्जत कर रहे हैं। बिजली ठीक करानी हो तो खुद निकलकर जाइए, मैं किसी के बाप का नौकर नहीं हूँ।

रमेसर : अच्छा तो फिर मरने के लिए तैयार हो जाओ। भाइयो और बहनो, अबसे एक मिनट के अंदर आप लोग यहाँ पर एक लाश फड़कती हुई देखेंगे . .

मु० ४ : अँधेरे में क्या देखने को मिलेगा ... पहले रोशनी तो आ लेने दो।

जानकी : बताओ यह किसकी आवाज़ है ?

संजय : पहले तुम बताओ कि तुम कौन हो।

जानकी : मैं सुलताना डाकू हूँ ... अब बताओ।

संजय : तुम अगर सुलताना डाकू हो तो ये औरत किस एडवांस है। लेकिन तुम सुलताना डाकू नहीं हो।

जानकी : किसने कहा तुमसे कि मैं सुलताना डाकू नहीं हूँ ?

संजय : तुम्हारी आवाज मुझसे कह रही है। ये मर्द की आवाज नहीं है और सुलताना डाकू मर्द बच्चा था। दूसरे वह तो मर भी चुका जाने कब का।

जानकी : उससे क्या ... लेकिन तुम ठीक कहते हो, मैं सुलताना डाकू नहीं हूँ। (पर्दे के पीछे से बाहर आते हुए) मैं जानकी दाई हूँ।

संजय : जानकी बाई ?

जानकी : बाई नहीं, दाई।

संजय : तो फिर यहाँ क्या कर रही हो ?

जानकी : वही जो दाई का काम है ... ये चीखें नहीं सुनी तुमने ? ... अभी देखना एक नये हिन्दोस्तानी का जनम होगा यहाँ।

संजय : यहाँ ? यहाँ क्यों ?

जानकी : दिन पूरे हो गये हैं।

संजय : तो फिर अपने घर बैठना था इनको। ऐसे में भी कहीं कोई सफ़र करता है ?

जानकी : हमारी रानी साहब का विचार कुछ और है ... बोलीं, जानकी सामान बाँधो, हम लोग अब चलेंगे। मैंने कहा, सरकार, ऐसे में अब आप कहाँ जायेंगी तो उन्होंने कहा, मेरा बच्चा चलती रेलगाड़ी में होगा,

फिर वो भी खूब चालू निकलेगा, खूब पैसा कमायेगा, खूब नाम कमायेगा ... और जो घर की पलँगड़ी पर हुआ तो घर पर ही बैठा रह जायेगा, निरा भुग्गा, अपने बाप-दादों के जैसा ...

संजय : तुम्हारी रानी साहब बात तो ठीक कहती हैं, मगर मान लो अभी इसी कालकुट्ट अँधेरे में कुछ हो जाय ?

जानकी : तो क्या, सब जानते हैं कि जानकी के हाथ में बिजली है। अभी तो अपना सब काम अँधेरे में होता है! बहुत तरह का आराम रहता है! यह तो अपना रोज का धंधा है! ब्रह्माजी से लेकर आज तक जाने कितने बच्चे जनाये होंगे अपने इन्हीं हाथों से

धुंआ फेंकता है।)

मु० १० : ये आप मेरे मुंह पर क्यों धुआं फेंक रहे हैं ?

मु० ५ : धुआं ही ना फेंक रहा हूं, कोई बम तो नहीं फेंक रहा हूं !

मु० १० : मगर धुआं भी क्यों फेंक रहे हैं ?

मु० ५ : तो और कहां फेंकूं ?

मु० १० : जहां जो चाहे फेंकिए, बस मेरे मुंह पर मत फेंकिए।

मु० ५ : आदमी जहां बैठकर सिगरेट पियेगा, धुआं भी तो वहीं फेंकेगा, कि सिगरेट पियेगा गोंडे में और धुआं फेंकने जायेगा पीलीभीत ! आपका जी करे आप भी सिगरेट पीजिए और मेरे मुंह पर धुआं फेंकिए, मैं चूं भी नहीं करूंगा।

मु० १० : मुझे क्या काले कुत्ते ने काटा है जो मैं सिगरेट पीने जाऊं !

मु० ५ : तो क्या ये तमाम लोग जो सिगरेट पीते हैं, सबको काले कुत्ते ने काटा है ?

मु० १० : जरूर काटा है वर्ना क्यों सिगरेट फूंककर एक हजार बीमारियों को न्योता देते ... ब्रांकाइटिस, कोलाइटिस, हेपाटाइटिस, अपेंडिसाइटिस, साइनसाइटिस, पेरिटोनाइटिस, ओटाइटिस, पैराटाइटिस, ग्लोसाइटिस, टांसिलाइटिस, फैरिंजाइटिस, लैरिंजाइटिस, राइनाइटिस, कार्डाइटिस, पेरीकार्डाइटिस, मायोकार्डाइटिस, एण्डोकार्डाइटिस ...

मु० ५ : (थोड़ा-सा खिसकते हुए) हो गया भाई, बहुत हो गया ।

मु० १० : (उसके सर पर सवार) मेनिंजाइटिस, माइलाइटिस,

मेनिंजोमाइलाइटिस, ऑस्टियोमाइलाइटिस, जिंजिवाइटिस, ट्रेकियाइटिस, कन्जंक्टिवाइटिस, एन्सेफ़लाइटिस, गैस्ट्राइटिस, न्यूमोनाइटिस, पैंक्रियाइटिस ...

मु० ५ : (घबराकर और दूर हटते हुए) छोड़ो भी, तुम्हें हो क्या गया ? दिमाग़ ख़राब है ?

मु० १० : (किसी तरह पीछा नहीं छोड़ता) एन्ट्राइटिस, सेलुलाइटिस, कोलेंजाइटिस, क्रफ़राइटिस, मेट्राइटिस, सैलफ़िंजाइटिस, आर्काइटिस, आर्थ्राइटिस ...

मु० ५ : (तेज़ी से पीछे हटते हुए) अमाँ ये आदमी है कि बीमारियों का सूची-पत्र। कोई कुछ करता क्यों नहीं ? आप लोग सब चुप कैसे बैठे हैं ?

मु० १० : (उतनी ही तेज़ी से उसको पिछियाये हुए) फ़ाइब्राटिस, सर्वाइटिस, वजाइनाइटिस, यूरेथ्राइटिस, डर्मिटाइटिस ...

मु० ५ : अहाहा, कैसा अद्भुत संगीत है, मुझे तो नशा सा चढ़ने लगा !

मु० १० : (पूर्ववत् उसको खदेड़ते हुए) स्पॉण्डलाइटिस, मिस्टाइटिस, सिनोवाइटिस, स्टोमाइटिस ...

मु० ५ : (थककर निश्चल, निरुपाय) अब तुम बंद करोगे या नहीं। मेरे बदन पर तमाम कीड़े से चलने लगे। लगता है अभी मर जाऊँगा !

मु० १० : (विजय-पताका सी फहराते हुए) एलिफ़ैंटाइसिस, थाइसिस, अल्सर, कैंसर, येस सर, नो सर, जितनी बीमारियाँ हैं, सबकी जड़ में सिगरेट है ...

मु० ५ : (दीन, याचना-भरा स्वर) बस बस भाई अब दया करो। कान पकड़ता हूँ जो कभी सिगरेट को हाथ भी

धुंआ फेंकता है।)

मु० १० : ये आप मेरे मुंह पर क्यों धुआं फेंक रहे हैं ?

मु० ५ : धुआं ही तो फेंक रहा हूं, कोई बम तो नहीं फेंक रहा हूं !

मु० १० : मगर धुआं भी क्यों फेंक रहे हैं ?

मु० ५ : तो और कहां फेंकूं ?

मु० १० : जहां जी चाहे फेंकिए, बस मेरे मुंह पर मत फेंकि

मु० ५ : आदमी जहां बैठकर सिगरेट पियेगा, धुआं भी तो फेंकेगा, कि सिगरेट पियेगा गोंडे में और धुआं फें जायेगा पीलीभीत ! आपका जी करे आप भी सि पीजिए और मेरे मुंह पर धुआं फेंकिए, मैं चूं भी करूंगा।

मु० १० : मुझे क्या काले कुत्ते ने काटा है जो मैं सिगरेट जाऊं !

लगाऊँ। मुझे क्या पता था कि आज एक डाक्टर का पड़ोस है, सबसे बड़ा महारोग ...

(मुसाफिर ५ अपना सामान उठाकर दूर चला जाता है। औरत की चीखें सुनायी पड़ती हैं। संजय और मुसाफिर ६ बात करते हुए मंच पर आगे की ओर बढ़ आते हैं।)

संजय : जवाब नहीं अपने इस अंधेरे डिब्बे का ... सब किस मजे से बैठे हैं कि जैसे चौपाल जमी हो और पास ही आग में आलू भुन रहे हों !

(प्लेटफार्म से फेरीवाले की आवाज आती है, 'आलू-दम खाइए, आलूदम, चटपटे आलूदम।')

मु० ६ : रोशनी में वो मजा कहाँ प्यारे जो अंधेरे में है ... अंधेरे में एक नशा होता है, एक जादू, जिसके घेरे बढ़ते ही चले आते हैं और देखते-देखते एक मायालोक खड़ा हो जाता है उसी अंधेरे का, एक इन्द्रजाल जिसने सबको अपनी गिरफ्त में ले रखा है ...

संजय : मैं रोशनी लेकर आऊँगा और इस इन्द्रजाल को चिथड़े-चिथड़े कर दूँगा ...

मु० ६ : और सब भरम जो अंधेरे की चादर में लिपटे पड़े हैं, एक साथ खुल जायेंगे और आदमी का असली चेहरा ...

जायें ...

(खर्राटों की आवाजें)

संजय : मेरा तो दम घुट रहा है ...

मु० ६ : तो जाओ, झक मारो, मगर कुछ होगा नहीं ... सब तरफ अंधेरा है ...

संजय : कहां ? देखते नहीं, प्लेटफार्म कैसा जगमगा रहा है ?

मु० ६ : रोशनी जो है सब प्लेटफार्म पर है ... डिब्बे सब अंधेरे हैं ..

संजय : मैं नहीं मानता ..

मु० ६ : तो जाओ, अपनी आंख से देख लो ... मेरी तो उम्र गुजर गयी इसी गाड़ी पर सफर करते-करते ... मुझे तो याद ही नहीं पड़ता, किस दिन अंधेरा नहीं था...

संजय : संजय मैं हूं मगर लगता है दिव्य दृष्टि आपके पास है जो यहीं बैठे-बैठे ..

मु० ६ : तो जाते क्यों नहीं, संजय !

संजय : हम सब मिलकर इस अंधेरे को काटेंगे ...

मु० ६ : पहले एक दूसरे का गला तो काट लें ... अंधेरा तो अपना हमेशा का साथी है ... बहुरूपिया ... एक आयेगा, दूसरा आयेगा ... जल्दी क्या है !

संजय : मुझे डर लगता है ...

मु० ६ : धत्तेरे की, अंधेरा भी कोई डरने की चीज है ... अंधेरा तो बड़ी मेहरबान चीज है ... बहुत से काम जो रोशनी में नहीं किये जा सकते, अंधेरे में होते हैं ...

संजय : बच्चे को अंधेरे से डर नहीं लगेगा ?

मु० ६ : कैसी बात करते हो ! बच्चा क्या जाने रोशनी क्या

चीज है ? नौ महीने इसी अँधेरे मे रहकर तो आता है !

मु० ६ : यात्रा अँधेरे से अँधेरे तक ... मैं तो कहता हूँ, कोई इस कमबख्त सूरज का मुँह भी काला कर देता तो कितना मजा आता !

संजय : सब झगड़े मिट जाते ...

मु० ६ : हाँ, बिलकुल मिट जाते ...

संजय : मरघट पहुँचकर यों भी सब झगड़े मिट जाते हैं ...

मु० ६ : अभी तो मुर्दों को स्लीपिंग पिल्स लिये बग़ैर इतनी अच्छी नींद आती है !

संजय : तुम्हारी बातों से मुझे डर लगता है ...

मु० ६ : फिर वही बात । आओ, मुझसे लगकर बैठो । तुम अभी बच्चे हो । उम्र गुजरने दो । वक्त बड़ा कार-साज है । जल्दी ही, बहुत जल्दी, वो दिन भी आ जायेगा जब तुम्हें अँधेरे से नहीं रोशनी से डर लगेगा ।

संजय : वो रात के कीड़े होते हैं ...

मु० ६ : किसी के माथे पर नहीं लिखा था, वर्ना हम पढ़ न लेते ?

संजय : मुझे रोशनी चाहिए, रोशनी, जगमग रोशनी ...

मु० ६ : मेरा कहना मानो, एक रामनामी ओढ़ लो उसकी ...

संजय : देखना, मैं अभी बिजलीवाले को लेकर आता हूँ ... फिर सब जगह रोशनी हो जायगी ... (संजय जाने को होता है ।)

मु० ६ : (संजय के जाते-जाते) जाओ, अपना बैठ और बहुत से रोशनी के दीवाने मुझे रास्ते में मिल गए, सड़क पर घूमते हुए ...

संजय : मुझे डराओ मत ...
पु० ६ : तुम तो यों ही बहुत डरते हो ...
संजय : अंधेरे से ... पर के झुलसने से नहीं ...

(संजय जाता है और इसी के साथ पर्दा गिरता है।)

दृश्य २

(रेलवे प्लेटफार्म । ढेरों लोग आते-जाते, दौड़ते-भ नजर आते हैं । उन्हीं में खोचेवाले भी हैं । सब अ भागमभाग में पड़े हैं । किसी को किसी से बात क की फुर्सत नही है । संजय घबराया हुआ सा फिर र है । उसे बिजलीवाले की तलाश है । दूर पर कि को देखता हुआ वह आगे बढ़ रहा है कि एक मुसाफि से जा टकराता है जो हाथ मे गरम पूड़ी और तरका लिये तेजी से अपने डिब्बे की ओर बढ़ा जा रहा था दोनों जमीन पर गिर जाते हैं ।)

मु० पूड़ी० : अबे हो !

संजय : अबे तुम जो हाथ मे ये सब कूड़ा-कचरा लेकर सबसे टकराते फिरते हो ।

मु० पूड़ी० : टकराया कौन, मैं कि तुम ?

संजय : टक्कर हमेशा दो के बीच होती है .. तुम मुझसे टकराये, मैं तुमसे टकराया ...

मु० पूड़ी० : पहले कौन टकराया ?

संजय : पहले और बाद क्या होता है जी, दोनों एक साथ टकराये ...

मु० पूड़ी० : मैं तो अपने रास्ते चला जा रहा था ...

संजय : मैं भी अपने रास्ते चला जा रहा था ...

मु० पूड़ी० : तुम्हारी आँखें तो आसमान पर टंगी थीं ...

संजय : और तुम्हारी आँखें अपनी साग पूड़ी पर जमी थीं ...

मु॰ पूड़ी॰ : सारा सब लेकर गिरा दिया ...

संजय : मुझे बड़ा दुख है ...

मु॰ पूड़ी॰ : तुम्हारा दुख लेकर मैं चाटूँ ?

संजय : हाँ, दुख से अच्छा अचार और कहाँ मिलेगा !

फेरी॰ १ : पान-बीड़ी-सिगरेट।

फेरी॰ २ : दूध ... गरम दूध ...

फेरी॰ ३ : गरम पूड़ी लो ... साग-पूड़ी ...

मु॰ पूड़ी॰ : निकालो एक रुपया ...

संजय : किस बात का ?

मु॰ पूड़ी॰ : हरजाना।

संजय : कैसा हरजाना ?

मु॰ पूड़ी॰ : देखो ज्यादा हुज्जत मत करो। रुपया निकालो, फिर से ले लूँ ...

संजय : कटोरा लेकर भीख क्यों नहीं माँगते।

मु॰ पूड़ी॰ : मैं भीख नहीं हरजाना माँग रहा हूँ।

संजय : बड़े आये हरजानेवाले ! दोना मजबूती से क्यों नहीं पकड़ रक्खा था ? हाथ में जैसे दम ही नहीं !

मु॰ पूड़ी॰ : अभी एक हाथ पड़ेगा तो पता चलेगा दम है कि नहीं ?

संजय : और मेरा हाथ पड़ेगा तो मुँह के बल जाकर गिरोगे अपनी उसी साग-पूड़ी में !

(आस्तीन-वास्तीन चढ़ाकर दोनों गुत्थमगुत्था के लिए तैयार होते हैं।)

संजय : मैं कहता हूँ अब भी होश में आ जाओ वर्ना मर-मरा गये तो ये साग-पूड़ी तुम्हारे नाम को रोयेगी।

मु० पूड़ी० : साग-पूड़ी को ऐसी-तैसी। आज निपटारा होकर रहेगा। समझ क्या रक्खा है तूने अपने को…

संजय : देखो परदेस का मामला है… तुम भी परदेसी, मैं भी परदेसी…

मु० पूड़ी० : धत्तेरे की ! अभी कैसा डेढ़ हाथ की जीभ बना रहा था और मैं मैदान में उतर आया तो लगा देसी-परदेसी गाने।

(एक धौल जमाते हुए)

जा, छोड़े देता हूँ नहीं आज मारते-मारते…

(संजय भी एक ज़ोर का हाथ मारता है। उसी वक्त एक पुलिसमैन आकर दोनों को पकड़ लेता है।)

पुलिसमैन : क्या मारपीट मचा रक्खी है। चलो अब तुम दोनों को हवालात में बंद करता हूँ।

(ले चलने को होता है।)

संजय : इसको ले जाइए दरोगा साहब — ये बड़ा बदमाश आदमी है। साग-पूड़ी खाता है और सबसे झगड़ा करता है।

पुलिसमैन : तुम तो बड़े दूध के धोये हो न !

संजय : मैं तो हुजूर, बिजलीवाले की खोज में निकला हूँ, कहीं मिलता ही नहीं। मेरे डिब्बे में एक औरत के बच्चा होनेवाला है। जल्दी का मामला है।

पुलिसमैन : अभी आप इतने इत्मीनान से खड़े झगड़ा कर रहे ?

मान लीजिए मैं ही एक रुपया निकालकर दे देता तो कौन ऐसा आसमान फट पड़ता — और खैर इनको तो खुशी ही मनानी चाहिए कि वो साग-पूड़ी नीचे गिर गयी। उसे खाकर कोई हैजे से बच नहीं सकता। मतलब यह कि सभी कुछ हो सकता था ... झगड़े की तो कोई बात ही नहीं ... वो तो देखिए ऐसा है ..

पुलिसमैन : बेकार बातें मत बनाओ, तुम दोनों दस नंबरी हो, तुम्हारा हुलिया, तुम्हारी हिस्ट्री सब हमारे पास पहले ही पहुंच चुकी है ... लड़कियां भगाना तुम दोनों का पेशा है ... अभी चलो तुम्हारी खाल उधेड़ी जाती है ...

संजय : हमारी खाल उधेड़कर आपको क्या मिलेगा सरकार, एक जूता भी तो नहीं बन सकता!

पुलिसमैन : चुप बे, वर्ना यहीं से जूते बरसने लगेंगे!

मु० पूड़ी० : मैं तो हुजूर, साग-पूड़ी लेकर अपने डिब्बे में जा रहा था ...

पुलिसमैन : ये सब उड़नघाइयां किसी और को बताना, हमारी उम्र बीत गयी इसी पुलिस के महकमे में। रोज तुम्हारे जैसे कितनों को मुर्गा बनाता हूं। नस-नस पहचानता हूं!

संजय : जाने किस अभागे का मुंह देखकर उठा था आज — बिजलीवाला तो मिला नहीं, मिल गये आप।

पुलिसमैन : मेरे साथ चलो, मैं अभी तुमको बिजलीवाले से मिलाये देता हूं!

संजय : बेकार बात है। मैं पिछले आध घंटे से बिजलीवाले को ढूंढ़ रहा हूं!

पुलिसमैन : झूठ मत बोलो, पिछले आध घंटे से तुम इस आदमी से

मु० पूडी० : साग-पूड़ी की ऐसी-तैसी ! आज निपटारा होकर रहेगा। समझ क्या रक्खा है तूने अपने को ...

संजय : देखो परदेस का मामला है ... तुम भी परदेसी, मैं भी परदेसी ..

मु० पूडी० : चलो रे जी ! अभी कैसा डेढ़ हाथ की जीभ चला रहा था और मैं मैदान में उतर आया तो लगा देसी-परदेसी गाने ।

(एक धौल जमाते हुए)

जा, छोड़े देता हूँ नहीं आज मारते-मारते ...

(संजय भी एक ओर का हाथ मारता है । उसी वक्त एक पुलिसमैन आकर दोनों को पकड़ लेता है ।)

पुलिसमैन : क्या मारपीट मचा रक्खी है । चलो अब तुम दोनों को हवालात में बंद करता हूँ ।

(ले चलने को होता है ।)

संजय : इसको ले जाइए दरोगा साहब — ये बड़ा बदमाश आदमी है । साग-पूड़ी खाता है और सबसे झगड़ा करता है ।

पुलिसमैन : तुम तो बड़े दूध के धोये हो न !

संजय : मैं तो हुजूर, बिजलीवाले की खोज में निकला हूँ, कहीं मिलता ही नहीं । मेरे डिब्बे में एक औरत के बच्चा होनेवाला है । जल्दी का मामला है ।

पुलिसमैन : अभी आप इतने इत्मीनान से खड़े झगड़ा कर रहे थे । मैं बड़ी देर से देख रहा था तुम दोनों को ...

संजय : तो हुजूर ने झगड़ा बंद क्यों नहीं करवा दिया ? आपका एक इशारा होता और झगड़ा बंद हो जाता । कोई बात थोड़े ही थी. जरा सा साग-पूड़ी का मामला था ।

मान लीजिए मैं ही एक रुपया निकालकर दे देता तो कौन ऐसा आसमान फट पड़ता — और खैर इनको तो खुशी ही मनानी चाहिए कि वो साग-पूड़ी नीचे गिर गयी। उसे खाकर कोई हैजे से बच नहीं सकता। मतलब यह कि सभी कुछ हो सकता था ... झगड़े की तो कोई बात ही नहीं ... वो तो देखिए ऐसा है ...

पुलिसमैन : बेकार बातें मत बनाओ, तुम दोनों दस नंबरी हो, तुम्हारा हुलिया, तुम्हारी हिस्ट्री सब हमारे पास पहले ही पहुँच चुकी है ... लड़कियाँ भगाना तुम दोनों का पेशा है ... अभी चलो तुम्हारी खाल उधेड़ी जाती है ...

संजय : हमारी खाल उधेड़कर आपको क्या मिलेगा सरकार, एक जूता भी तो नहीं बन सकता!

पुलिसमैन : चुप बे, वर्ना यहीं से जूते बरसने लगेंगे!

मु० पूड़ी० : मैं तो हुजूर, साग-पूड़ी लेकर अपने डिब्बे में जा रहा था ...

किसी और को बनाना, हमारी उम्र
के महकमे में। रोज तुम्हारे जैसे
पहचानता हूँ!
र उठा था आज —
गये आप।

झगड़ रहे हो।

संजय : हुजूर, उसने अपना काम कर रखा था मगर मेरी बिजलीवाले पर लगी थी।

पुलिसमैन : छोड़ो, तुम कुछ भी कर रहे थे, मुझसे क्या मतल चलो, अब हवालात चलो ...

संजय : चलिए अगर ऐसी ही आपकी मर्जी है — मगर देखता हूं कि आपका चेहरा काफ़ी थका-थका सा क्यों न एक-एक प्याली चाय ...

पुलिसमैन : मुझको घूस देना चाहते हो ? क्या समझ रखा है तुम घूस का मतर यहां नहीं चलेगा !

संजय : आप भी कैसी बात करते हैं दरोगा साहब — चा भी कोई घूस है !

(तीनों वहीं पर एक किनारे चाय की स्टाल पर जा हैं।)

संजय : भइ चायवाले, इधर तीन प्याली चाय देना ... और हां, कुछ मीठे और नमकीन बिस्कुट भी।

(चायवाला सभी चीजें पेश करता है और तीनों वहीं खड़े-खड़े ये हल्का नाश्ता करते हैं। चाय की हर घूंट के साथ पुलिसमैन के चेहरे का रंग बदलता जाता है, जो चीज चेहरे पर अलग-अलग रंगों की रोशनी फेंक-कर दरसायी जायेगी।)

संजय : (मुंह चलाते हुए) अच्छे खस्ता बिस्कुट हैं ...

पुलिसमैन : (मुंह भरा हुआ है इसलिए सर हिलाकर हामी भरता है।)

संजय : चाय भी बहुत मजे की है ... दूध-चीनी सब बहुत

(पुलिसमैन अपने खाने में व्यस्त है, कोई जवाब नहीं देता।)

संजय : (मुसाफिर पूड़ीवाले को संबोधित करके) तुम्हारी साग-पूड़ी से ये बिस्कुट और चाय हजारगुना अच्छी है — कम से कम हैजे का तो डर नहीं।

मु० पूड़ी० : (घटनाओं के इस विचित्र उलट-फेर से थोड़ा भौंचक) चाय दुनिया की सबसे अच्छी चीज है।

संजय : और बिस्कुट ?

मु० पूड़ी० : वह तो और भी बढ़कर .

संजय : खासकर अगर फोकट का हो। चलो प्यारे, दरोगा साहब के तुफैल में आज तुमको भी अच्छी चाय मिल गयी।

(बटुआ हाथ में लेकर, चायवाले से)

क्यों भई चायवाले, कुल कितना हुआ ?

चायवाला : (दरोगा साहब की ओर देखते हुए) सरकार की नजर बनी रहे, रुपया दो रुपया कौन चीज है ... इतनी सी सेवा हमारी भी।

संजय : नहीं, तुम अपना पैसा लो। ये सब मुझे पसंद नहीं।

चायवाला : (बड़े अनुनय के साथ) सरकार ..

संजय : यह तो बुरा पंच डाला तुमने। तुम्हारा दिल भी नहीं तोड़ा जाता, और अपना उसूल भी मुझे प्यारा है ... लेकिन इसमें शक नहीं, चाय-पानी करके तबियत बहाल हो गयी — क्यों दरोगा साहब ?

पुलिसमैन : वाह, जी खुश हो गया।

संजय : तो फिर आइए, इसी खुशी में एक गाना हो जाय, जैसा अपनी फिल्म में होता है। जनता और शासन

का ऐसा सुखदायी मिलन कब-कब होता है।
(तीनों धरनी बेसुरी और बेमेल आवाजों में किसी चालू फ़िल्म का एक गीत गाते हैं।)

संजय : अच्छा तो दरोगा साहब, अब आप अपना काम देखिए, हम लोग अपना। टा टा।
(संजय मंच के दाहिने ओर वाले रास्ते से बाहर जाता है, मुसाफ़िर पूडीवाला अपने डिब्बे की ओर जाता है और पुलिसमैन वहीं खड़ा रहता है, किसी शिकार की घात में।)

फेरी० १ : पान-बीड़ी-सिगरेट।

फेरी० २ : दूध ... गरम दूध ...

फेरी० ३ : गरम चाय ... चाय लीजिए ... गरम चाय ...

फेरी० ४ : समोसे गरम समोसे।

फेरी० ५ : गरम गरम खबरें पढ़िए ... चौदह मरे नब्बे घायल सात मरे पन्द्रह घायल ...
(मंच के बायें ओर के रास्ते से संजय का प्रवेश। उसकी आँखें बिजलीवाले को ढूंढ रही हैं। रेलवई वर्दी पहने एक आदमी को देखकर झट उसके पास पहुँचता है।)

संजय : ज़रा सुनिए जी ...

वर्दीपोश : (बहुत नाक-भौं चढ़ाकर, झिड़की के स्वर में) सुन रहा हूँ ... बहरा नहीं हूँ ... कहिए क्या कहना है

संजय : (घबराते और अटकते हुए) ब् ब् बात ये है कि मैं मैं बड़ी देर से ब् ब् बिजलीवाले को ढूंढ रहा हूँ ...

वर्दीपोश : तो मैं क्या करूँ—

संजय : आप भी रेलवई के आदमी हैं ... बता सकते हैं बिजली

वाला कहाँ मिलेगा ?

वर्दीपोश : मैं क्या जानूँ कहाँ मिलेगा ... होगा कहीं ... मेरी जेब में नहीं है, इतना मैं जानता हूँ। (जेब उलटकर दिखलाता है।)

संजय : बड़ी मुश्किल है। कोई नहीं बताता बिजलीवाला कहाँ मिलेगा।

वर्दीपोश : ढूँढ़ लीजिए, यहीं कहीं होगा ...

संजय : एक घंटे से ढूँढ़ ही तो रहा हूँ...

वर्दीपोश : होगा, यहीं कहीं होगा, और किसी डिब्बे में ...

संजय : (झुंझलाकर) किसी डिब्बे में नहीं है ... मैंने सारी गाड़ी छान मारी .

वर्दीपोश : तो आप मेरा सर क्यों खा रहे हैं। जाइए जहाँ बिजली-वाला हो।

संजय : (एक मिस्त्रीनुमा आदमी को देखकर जिसके हाथ में कुछ औजार भी हैं)

अरे भैया सुनना, तुम बिजलीवाले हो ?

मिस्त्री : (बहुत हड़बड़ी में और चिढ़कर) आप भी खूब आदमी हैं !

संजय : क्यों ?

मिस्त्री : जब आप पहचानते नहीं किसी को तो टोक क्या देते हैं ! आपको मालूम है मैं कितने जरूरी काम से जा रहा था ?

संजय : मैं क्या जानूँ आप किस जरूरी काम से जा रहे थे लेकिन पहचानने की आपने एक ही कही, बिजलीवाले के क्या कोई सींग-पूँछ होती है ? मिस्त्री आप, मिस्त्री वो ... किसी के मत्थे पर तो लिखा नहीं है ...

मिस्त्री : (बड़ी शान से) मैं इंजन का हेड मिस्त्री हूँ ...

संजय : तो ये कमबख्त बिजलीवाला कहाँ है ? कोई बताता ही नहीं ।

मिस्त्री : (बहुत धीमे से, जैसे कोई बड़ी राज की बात बता रहा हो) क्या बतायेगा कोई —किसी ने आज तक बिजलीवाले को नहीं देखा !

संजय : तो कैसे मालूम कि बिजलीवाला है भी ?

मिस्त्री : होगा जरूर, जब ड्यूटीबोर्ड में लिखा है — वैसे ही जैसे भगवान । किसी ने आज तक उसको नहीं देखा लेकिन सब जानते हैं कि भगवान है ..

संजय : जरूर कुछ ऐसी ही बात है ...

मिस्त्री : विश्वास रखिए, बिजलीवाला यहीं कहीं होगा .. ढूँढ़िए, आपको मिलेगा ...

संजय : मैं तो और चार घंटे ढूंढ़ता रहूँ लेकिन गाड़ी जो छूट जायेगी ...

मिस्त्री : तो फिर जब इधर आना हो तो तब ढूँढ़िएगा ... ढूंढने का अपना एक अलग मजा है जो पाने न पाने से बहुत ऊपर है !

संजय : *वाह वाह, एक करोड़ रुपये की बात कह दी आपने — मेरा तो नसीब खुल गया आपसे मिलकर । ऐसे पहुँचे हुए लोग कब किसे मिलते हैं ।* मगर मैं कहता हूँ आप यहाँ कहाँ पड़े हैं ? न आप ही ने अपने को पहचाना और न देश ने आपको पहचाना ...

मिस्त्री : आपने मेरा दिल दुखा दिया बाबू साहब ... मुझे रोना आ रहा है ... आजकल सोर्स के बिना कौन किसे पहचानता है !

—

(रो पड़ता है, फिर रोते-रोते) मैं इंटर फेल हूँ बाबू साहब ... मुझे किसी ऊँची जगह पर होना था सो मैं इंजन में कोयला झोंकता हूँ ...

संजय : (चुप कराते हुए) रोओ मत मेरे दोस्त ... सब ठीक हो जायेगा, एक दिन सब ठीक हो जायेगा ...

मिस्त्री : किस दिन ?

संजय : जिस दिन बिजलीवाला मिलेगा ...

मिस्त्री : तो फिर आओ, दोनो जने मिलकर ढूँढ़ें उसको ...

संजय : और तुम्हारी गाड़ी ?

मिस्त्री : खड़ी रहेगी ... घंटे भर आगे-पीछे मे किसका क्या बिगड़ा जाता है ...

संजय : और जो अफसर बिगड़ गया तुम पर ?

मिस्त्री : (बड़े रोब से) किस साले की मजाल है कि अपने को छू भी सके ... इसी हथौड़े से उसका सर तोड़ दूँगा ... मगर अभी तो चलूँ ... एक जरूरी काम याद आ गया। (जाता है। फिर संजय पागलों की तरह दौड़-दौड़कर यहाँ-वहाँ बिजलीवाले को ढूँढ़ना शुरू करता है।)

संजय : क्यो भई, तुम बिजलीवाले हो ?

मु० ११ : देखते नहीं मैं मुसाफिर हूँ !

संजय : मुसाफिर तो सभी हैं इस दुनिया मे, कौन कोई यहाँ पर घर बनाकर रहने के लिये आया है — लेकिन यह बताओ तुम बिजलीवाले हो कि नहीं ?

मु० ११ : भागते हो कि दूँ एक लप्पड़ खींचकर ...

संजय : गुस्सा मत हो यार, बात ये है कि ...

मु० ११ : कुछ बात नहीं है। तुम यहाँ से चलते-फिरते नजर

भागो यहाँ से अभी पुलिसवाले को बुलाता हूँ — पुलिस ... पुलिस ...

शकर : पुलिसवाला कुछ नहीं करेगा मेरे दोस्त, मैंने अभी उसे चाय पिलाई है।

मु० ११ : तो हो क्या कम मुश्किलें थीं यहाँ जो एक तुम और हो गए। बोलो क्या बात है ?

शकर : बात ये है कि मेरे डिब्बे में एक औरत के बच्चा होने वाला है और वहाँ मकानक की तरह जैसा अँधेरा है। कैसी भयानक बात है कि बच्चा ऐसे घटाटोप अँधेरे में पहली बार आँख खोले ...

मु० ११ : कुछ भयानक बात नहीं है, बल्कि अच्छा है, शुरू से आदत पड़ जायेगी।

फेरी० १ : पान-बीड़ी-सिगरेट।

फेरी० २ : दूध ... गरम दूध ...

फेरी० ४ : गरम चाय ...

संजय : (एक आदमी के पास पहुँचकर बड़ी आजिज़ी से) हो न हो आप बिजलीवाले हैं ...

मु० १२ : हो न हो आप उल्लू के पट्ठे हैं !

संजय : ज़बान सँभालकर बात कीजिए ...

मु० १२ : पहले आप अपने खुर सँभालिए — सारा मेरा बिस्तरा कुचलकर रख दिया ...

(संजय वहाँ से सरपट भागता है। फिर एक वर्दीपोश आदमी को देखकर उसके पास पहुँचता है।)

संजय : चलिए चलिए, जल्दी कीजिए ... गाड़ी अब छूटने ही वाली है ...

संजय : मेरे डिब्बे में जच्ची का एक केस है और ...

० क० : किस कमबख्त ने आपसे कह दिया कि मैं डाक्टर हूँ ...

संजय : डाक्टर किसे चाहिए ... आप बिजलीवाले हैं न ?

० क० : आपका दिमाग़ खराब है ?

संजय : मेरा दिमाग़ गया चूल्हे-भाड़ में। आप बिजलीवाले हैं कि नहीं ?

० क० : कह तो दिया मैं बिजलीवाला नहीं हूँ ...

संजय : तो फिर आप किस मर्ज़ की दवा हैं ?

० क० : मैं टिकट कलेक्टर हूँ ...

संजय : यानी कि रेलवे के मुलाज़िम ...

० क० : इसमें क्या शक ...

संजय : तो फिर बताते क्यों नहीं बिजलीवाला कहाँ है ?

० क० : मैं टिकट का लेखा-जोखा रखता हूँ, बिजलीवाले का नहीं ... मैं क्या जानूँ कहाँ है। यहीं कहीं होगा।

संजय : यहाँ तो कहीं नहीं ... डेढ़ घंटे से सिर मार रहा हूँ ... सुई भी गुमी होती तो इतनी देर में मिल जाती ! कहाँ मुँह छिपाये बैठा है ?

० क० : तो आप मेरी खोपड़ी क्यों चाट रहे हैं ? बिजलीवाले का अता-पता रखना मेरा काम नहीं है।

संजय : तो फिर किसका काम है ? दर्जनों लोग रेलवे की वर्दी पहने इधर-उधर इठलाते फिर रहे हैं — जिससे पूछो वही कहता है ये मेरा काम नहीं है।

० क० : आप जाइए स्टेशन मास्टर से मिल लीजिए — और अगर वो भी न मिलें, यानी कि किसी ज़रूरी काम से कहीं गये हों, तो उनके दफ़्तर के सामने आपको एक

शिकायत की किताब रक्खी मिलेगी, उसमें आप जो चाहें लिख दीजिए ...

संजय : फिर ?

टि० क० : फिर जब सारी मक्खियाँ उस पर बैठ लेंगी तो उस पन्ने को पलट दिया जायेगा ! इस तरह आपकी शिकायत भी रफ़ा हो जायेगी और आप खुश-खुश अपने घर चले जायेंगे !

संजय : मगर बिजलीवाले का क्या होगा ?

टि० क० : बिजलीवाले का क्या होना है । ... और न शायद आप ही चाहेंगे कि आपकी किसी बात से एक गरीब आदमी का रोज़ी छुटे ... फिर अपनी सरकार कैसी भली है ...

संजय : क्या कहना ... अभी तो सब तरफ़ इतना अमन-चैन है ... सावन का महीना है, बिजलीवाला भी कहीं आम की डाल में झूला डाले झूल रहा होगा ! बिजली की खिटखिट तो रोज़ की है, सावन तो साल में एक ही बार आता है ! कि नहीं ?

टि० क० : आप जब खुद ही इतने समझदार हैं तब मुझसे क्या पूछते हैं ... मैंने तो कह दिया आपने जो कहना था, यहीं कहीं होगा ...

(प्रस्थान)

संजय : और एक बार ढूँढ़ लेता हूँ अच्छी तरह, जायेगा कहाँ जब यहीं कहीं है ... (चौकन्नी आँखों से इधर-उधर ताकता है । एक किनारे पड़ी हुई दो बेंचों पर जाकर देखता है । फिर बेंच के नीचे झाँककर देखता है । फिर आगे बढ़कर कूड़ेदानी में झाँककर देखता है ।

फिर ऊपर छत की तरफ देखता है और उस तरह की आवाजें करता है, जैसी कबूतरबाज कबूतर को बुलाने के लिए करते हैं।) देख लिया, ऊपर-नीचे सब जगह देख लिया, कही नही ... आसपास कोई कुआँ तो नही है ? एक बार उसमे भी झांक लेता, कौन जाने पानी पीने गया हो ! अब तो बस एक चीज बची है — माइक से एलान ...

(संजय विंग्स से माइक लेकर आता है और एलान करने लगता है) बिजली मिस्त्री चन्द्रिका परशाद, तुम कहाँ हो ? लोग अँधेरे मे छटपटा रहे हैं मगर तुम्हारा पता नही ...

(दोनो विंग्स से दो-दो व्यक्ति निकलकर आते हैं और सजय के हाथ से माइक लेकर, सजय के इर्द-गिर्द बन्दरो की तरह उछलते-कूदते, बारी-बारी से उस पर एलान करते हैं।)

व्यक्ति १ : सब तरफ़ देख लिया झाँक लिया, कहीं तुम्हारी गन्ध भी नहीं मिली — ऐसे कहाँ छिपे बैठे हो ?

व्यक्ति २ : घर लौट आओ बेटा, माँ-बाप तुम्हारे लिए रो रहे हैं, जवान बहू तुम्हारे लिए तड़प रही है !

व्यक्ति ३ : हम लोगो का दम अब निकला ही चाहता है। मगर तुम्हारा पता नहीं कहाँ हो ? कैसे हो ? जिन्दा हो कि मर गये ? मर गये हो तो वैसा कहो, छुट्टी करके तुम्हारा जुलूस निकाला जाय ...

व्यक्ति ४ : लेकिन अगर जिन्दा हो और यह आवाज तुम तक पहुँचती है तो फ़ौरन एस० एम० के दफ़्तर में पहुँच जाओ ...

(चारों व्यक्ति उसी तरह हँसते-खिलखिलाते, उछलते-कूदते चले जाते हैं। संजय परेशान और खोया-खोया सा खड़ा रहता है कि उसे सामने से एक बाबाजी अपने भक्तों से घिरे हुए आते दिख जाते हैं। साथ में एक प्रेस रिपोर्टर भी है। भक्त सब पीली-पीली सुर्ख-दागी टोपियाँ लगाये हैं, बाबाजी की जयजयकार करते हैं और उन्हें मालाएँ पहनाते हैं। प्रेस रिपोर्टर फ़ोटो लेना चाहता है। बाबाजी उसे रोकते हैं और माला पहनते हुए फ़ोटो खिचवाते हैं। भक्तगण फिर जय-जयकार करते हैं।)

रिपोर्टर : एक्सक्यूज़ मी स्वामीजी! इस विश्वयात्रा के दौरान आपको क्या विशेष अनुभव हुए?

बाबाजी : अंधकार! सारा संसार अंधकार में डूबा हुआ है। मानवमात्र प्रकाश के लिए छटपटा रहा है। मुझे लगा उनकी आत्मा चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है: 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'...

(सभी भक्त श्रद्धाभाव से दुहराते हैं, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय')

बाबाजी : मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल! यही अब मेरे जीवन का कठिन संकल्प है। मैं ही उन्हें इस अंधकार से मुक्त करूँगा, मैं ही उन्हें रोशनी दिखाऊँगा!

संजय : अहाहा, महाराज! आप मेरे लिए साक्षात् देवदूत हैं। मैं बड़ी देर से रोशनी के लिए भटक रहा हूँ, लेकिन नहीं जानता कि इस अंधकार से क्योंकर मुक्ति मिलेगी!

बाबाजी : अंधकार से मुक्ति ! आत्मा का स्पंदन ! आत्मा परमात्मा ! ओ ऽ ऽ ऽ म् नारायण नारायण नारायण ! (बाबाजी पल दो पल के लिए जैसे समाधिस्थ होकर आँखें बंद कर लेते हैं। फिर आँखें खोलकर संजय से) बालक, तेरी जिज्ञासा सच्ची है। मुझे ऊपर से आदेश हुआ है कि तुझे सद्धर्म की दीक्षा दी जाय ...

संजय : दीक्षा लेकर मैं क्या करूंगा महाराज ! मुझे तो रोशनी चाहिए, अपने अंधेरे डिब्बे के लिए ...

बाबाजी : रोशनी कहीं बाहर से नहीं मिलती, मूर्ख ! उसे अपनी आत्मा में खोजना पड़ता है।

संजय : और आत्मा को कहाँ खोजूं, महाराज ?

बाबाजी : (चिढ़कर) उसी के लिए योगसाधना है, मंदबुद्धि ! योग से ही ज्ञानचक्षु खुलते हैं, तब आत्मा का दर्शन होता है ...

संजय : सो मुझे हो गया महाराज, मेरे ज्ञान चक्षु खुल गये, आपकी अमृत-वाणी से ही खुल गये ...
(भक्तगण जयजयकार कर उठते हैं। शोर थमने पर संजय अपनी बात पूरी करता है।)

संजय : (बनावटी श्रद्धा भाव से) मैं समझ गया महाराज, आप वाले प्रकाश से हमारा अंधकार दूर नहीं होगा ! वह तो बिजलीवाला ही दूर करेगा ...
('तो क्या तूने हमारे स्वामीजी को बिजलीवाला समझा था, पापी, नराधम, नास्तिक !' कहते हुए दो चार भक्तगण संजय को मारने के लिए उसकी ओर लपकते हैं पर संजय भाग जाता है। तभी माइक्रोफोन पर रेलवे अनाउन्सर की आवाज़ सुनायी पड़ती है :

'यात्री कृपया ध्यान दें। प्लेटफ़ार्म नंबर १ पर आने वाली ५ अप मेल ५ मिनट बाद प्लेटफ़ार्म नंबर १२ पर आ रही है ... अटेंशन प्लीज़, ५ अप मेल जो १ नंबर प्लेटफ़ार्म पर आनेवाली थी अब ५ मिनट बाद १२ नंबर प्लेटफ़ार्म पर आ रही है।' मुसाफ़िरों में भगदड़ मच जाती है और बाबाजी भी अपनी भक्त-मंडली के साथ अपना डंड-कमंडल उठाकर चले जाते हैं। इस तमाम भगदड़ में एक ही व्यक्ति बिलकुल शान्त अविचल खड़ा है, वही टिकट कलेक्टर। मंच के बायें ओर से संजय का प्रवेश।)

संजय : अरे, आप यहाँ खड़े क्या झक मार रहे हैं! गाड़ी तो १२ नंबर प्लेटफ़ार्म पर आ रही है ...

टि० क० : मैं मुआइना कर रहा हूँ ...

संजय : यहीं खड़े-खड़े ?

टि० क० : खड़े-बैठे से क्या मतलब जी ... अपना काम करना है ...

संजय : इसमें क्या शक ... मगर मैं तो साहब आपके धीरज की दाद देता हूँ!

टि० क० : धीरज के बिना कहीं कुछ होता है? (हल्का-सा व्यंग्य का स्वर) अब आप ही देखिए कितने धीरज से अपने उस हरामखोर बिजलीवाले को ढूँढ़ रहे हैं!

संजय : अजी, मैं किस खेत की मूली हूँ ... बगुले को देखिए, कैसा तलैया किनारे घंटों-घंटों मछली की ताक में एक टाँग पर खड़ा रहता है!

टि० क० : ——————

संजय : अच्छा भई, एलान तो हो गया ... अब चलूँ ज़रा

स्टेशन मास्टर को देखूं ...

टि० क० : (सिग्नल की ओर देखते हुए) आपका सितारा बुलंद है ... एस० एम० साहब खुद ही इधर चले आ रहे हैं।

संजय : कहाँ ?

टि० क० : (उँगली से इशारा करते हुए) वो रहे ...

(स्टेशन मास्टर साहब अपने किसी साथी के साथ हँसते-बोलते चले आ रहे हैं। संजय उनके पास जाकर खड़ा होता है। उसको देखते ही स्टेशन मास्टर की मुखमुद्रा कठोर और रूखी हो जाती है।)

स्टे० मा० : कहिए ?

संजय : साहब, बड़ी देर से बिजलीवाले को ढूंढ रहा हूँ ...

स्टे० मा० : (बड़ी उकताहट के साथ बात काटकर) तो मैं क्या करूँ ?

संजय : बात तो पूरी सुन लीजिए ..

स्टे० मा० : मुझे फुर्सत नहीं ... (अपने दोस्त की तरफ मुखातिब होकर) बताइए साहब, मैं यही सब किस्से सुनता बैठूंगा तो मेरा काम कौन करेगा ?

(फिर चलना शुरू कर देते हैं। संजय, पीछे-पीछे।)

स्टे० मा० : (पीछे मुड़कर, डपटते हुए, कुछ उसी तरह जैसे कुत्ते को डपटा जाता है) जाओ, ढूँढ़ो बिजलीवाले को, जहाँ मिले ... मेरी जान को क्यों पड़े हो ?

संजय : हुजूर, आप स्टेशन के मालिक हैं ... आप के पास न जाऊं तो कहाँ जाऊं ?

स्टे० मा० : कमाल है ! किसी का जरा सा कोई काम अटका नहीं कि स्टेशन मास्टर की खोपड़ी खाने पहुँच गये। कहीं

बिजली नहीं, कहीं पानी नहीं, कहीं पंखा गायब, कहीं कोई रीडिंग लाइट ही उखाड़कर अपने घर ले गया, किसी को स्लीपर में जगह नहीं मिलती ... स्टेशन मास्टर ग़रीब क्या-क्या देखे !

संजय : डेढ़ घंटे से बिजलीवाले की तलाश में घूम रहा हूँ ...

स्टे॰ मा॰ : आप डेढ़ बरस घूमते रहेंगे इसी तरह ... वो आपके हाथ आने का नहीं ... मेरी तक तो सुनता नहीं ... एक छोटा सा काम कहा, ज़रा मेरे कुत्ते को नहला दिया करो, मगर कहाँ ...

संजय : तो इसका मतलब है कि ...

स्टे॰ मा॰ : आप सीधे टिकट कटाइए और जाकर रेलवे मिनिस्टर से मिलिए। उनको बताइए कि हर स्टेशन पर एक गारद और तोपखाना होना ज़रूरी है। उसके बिना अब काम चलना मुश्किल है।

(हँसता है।)

संजय : आप तो हुज़ूर, दिल्लगी करते हैं !

स्टे॰ मा॰ : *दिल्लगी मैं नहीं आप कर रहे हैं ... बताइए, आपका* दिमाग़ ख़राब है जो बिजलीवाले के पीछे लठ लिये घूम रहे हैं ! बिजली नहीं है, इत्मीनान से अँधेरे में बैठिए, गपशप कीजिए, कोई मुँह पर तो ताला जड़ा नहीं है ...

संजय : वह तो आप ठीक कहते हैं मगर बात ये है कि ...

स्टे॰ मा॰ : *(बात काटकर, व्यंग्य से) बिजली होती तो आप बैठकर गीता की टीका लिखते !*

संजय : अजी मैं क्या लिखूँगा, उसके अधिकारी तो आप हैं जिनका जीवन गीता की जीती-जागती टीका है ...

स्टे॰ मा॰ : सो कैसे ?

संजय : गीता का तात्पर्य है निष्काम कर्मयोग ...

स्टे॰ मा॰ : मैं समझा नहीं ...

संजय : आप भला कैसे समझेंगे... फूल अपनी खुशबू का हाल क्या जाने ! निष्काम कर्मयोग अर्थात् — काम कुछ नहीं लेकिन व्यस्त हरदम !

स्टे॰ मा॰ : (डपटते हुए) क्या कहा ! (संजय तब तक वहाँ से खिसक गया है। हताश, आकर चाय की स्टॉल पर खड़ा होता है और एक प्याली चाय लेकर पी रहा है कि अचानक उसकी नज़र बिलकुल एक कोने में रखे हुए एक छोटे से बक्सानुमा काउंटर पर पड़ती है, जिसके पीछे कुर्सी डाले रेलवे की वर्दी पहने कोई बैठा है। काउंटर पर मोटे-मोटे अक्षरों में एक तख़्ती टँगी है — 'क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ ?' उसके पास ही एक बड़ा सा थूकदान रक्खा है जिस पर लिखा है 'मेरा इस्तेमाल करो'। संजय जल्दी-जल्दी अपनी चाय खत्म करता है, पैसे चुकाता है और लपक कर मददवाले काउंटर पर पहुँचता है।)

संजय : धत्तेरे की ! इसी को कहते हैं — बग़ल में लड़का, शहर ढिंढोरा ! मगर साहब, आप भी तो एक ही चीज़ हैं, यहाँ इस कोने में मुँह छिपाये बैठे हैं, थूकदान के बगल में ! माना कि इसमें कुछ दोष मेरी आँखों का भी है मगर क्या ये बेहतर न होगा कि आप कहीं ज़रा सामने की तरफ़ बैठा करें जहाँ आते-जाते लोगों की नज़र तो आप पर पड़ सके। देखिए न, घंटे भर से बिजलीवाले की तलाश में मारा-मारा फिर रहा हूँ,

आप दिख गये होते तो चुटकी बजाते सब काम हो जाता। मगर खैर, छोड़िए, अब उस बात का क्या ज़िक्र। अब तो आपसे यही गुज़ारिश है कि जल्द से जल्द एक बिजलीवाले का इंतज़ाम कर दीजिए। बला का अँधेरा है हमारे डिब्बे में, हाथ को हाथ नहीं सूझता, और उधर, कोढ़ में खाज, एक औरत के बच्चा होनेवाला है। कौन जाने अब तक हो भी गया हो। तो जनाब, यही आपकी सबसे बड़ा मदद होगी — एक बिजलीवाला, जो मुझे तो कहीं ढूंढे मिला नहीं। (बड़ी उत्सुकता से उसके मुँह की ओर ताकता रहता है। दो-चार सेकंड का वक़्त गुज़र जाता है, लेकिन उधर से कोई जवाब नही आता) कुछ तो कहिए सरकार! कब तक यों ही खड़ा रक्खेंगे? (अब भी कोई जवाब नही) क्या खूब। आप तो औरों से भी दो बांस आगे निकले। वो लोग हाँ-ना कुछ कहते तो थे, आपने तो जो चुप साधी है तो मुँह खोलकर ही नही देते।

(अब भी कोई जवाब नहीं)) आखिर मामला क्या है? आप कुछ ऊँचा तो नहीं सुनते? (आवाज़ चढ़ाते हुए) तो है कुछ उम्मीद बिजलीवाला मिलने की? (अब भी कोई जवाब नहीं) ये तो कोई शरीफ़ों का ढंग नहीं। मैं इतनी देर से कुत्ते की तरह भूंके जा रहा हूँ और आपके कान पर जूँ भी नहीं रेंगती! ये क्या अदा है आपकी। बुत बने बैठे हैं। कहीं आप गूँगे तो नहीं हैं। या काठ मार गया बैठे-बैठे। (अब भी कोई जवाब नहीं आता तो सज्जन का गुस्से के मारे बुरा हाल हो जाता है और वह जितना ही बकता-

झकता है उतना ही उसके दिमाग का पारा और भी चढ़ता जाता है) कमाल है ! (दर्शकों को संबोधित करते हुए) ये रेलवेवाले भी एक ही मसखरे हैं। पता नहीं कहाँ का बजरबट्टू लाकर बिठाल दिया यहाँ। न साला बोलता है न कुछ करता है — सर तक तो हिलाता नहीं। हाँ, अगर उनको किसी गूंगे-बहरे की परवरिश करनी ही तो घर बिठालकर करते — हमारी खोपड़ी पर उसको बैठाने की क्या जरूरत थी। क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ ! वाह, क्या खूब मदद मिल रही है ! और देखिए जरा, कमबख्त बेशरम भी कैसा एक नंबर का है। क्या-क्या तो मैंने उसको नहीं कहा मगर साले का खून भी लगता है पानी हो गया है, बैठा मुलुर-मुलुर ताके जा रहा है ! (अब भी कोई जवाब नहीं आता तो संजय जोर से काउंटर पर हाथ पटकता है और चिल्ला पड़ता है) अबे उल्लू की औलाद, तू कुछ बोलता क्यों नहीं ? इतना अच्छी तरह समझ ले, आज मैं तुझे बुलवाकर छोड़ूँगा कोई इस तरह सरीहन् मुझे जलील करे और मैं खड़ा उसे झेलता रहूँ ? नामुमकिन। (दो पल रुककर) अब भी बोलता है साले कि दूँ खाने भर को। एक ही झापड़ में तेरी जबान का लक़वा ठीक हो जायेगा। (जोर से डपटकर) बोल ! बोल कमीने ! और अगर तेरे मुँह में जबान भी नहीं है तो हरामजादे तू यहाँ बैठा क्यों है ? (झपटकर संजय उसकी गर्दन दबोच लेता है और जोर का एक झटका देता है। झटके से गर्दन ऊपर को खिचती है और चूं की आवाज होती

है। फिर उस टूटी हुई गर्दन को टेलीफ़ोन के चोंगे की तरह हाथ में पकड़े-पकड़े उससे बात करते हुए) प्यारे दोस्त, तुम तो गुपचुप काठ के पुतले निकले — ज़रा दबाने बग़ैर कोई साला चूँ भी नहीं करता। ... प्यारे बन्धु, तुमने तो आज मेरी आँख में ही धूल झोंकी है, मैं अभी तुमको टोकरे में डालकर आग में झोंक देता हूँ। (तभी उसकी नज़र कूड़ेदान पर पड़ती है। स्लेट ठीक उस जगह पर, जहाँ मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा है — 'मेरा इस्तेमाल करो।') मगर नहीं, जान क्यों, तुम्हारी ठीक जगह तो कूड़ेदान है। और इस कूड़ेदान का भी इससे अच्छा इस्तेमाल दूसरा क्या हो सकता है!

(पुतले को कूड़ेदान में पटककर चला जाता है। पर्दा गिरता है।

री नागरी भण्डार
बीकानेर

दृश्य ३

(डिब्बे में पूर्ववत् अँधेरा है। शोर मच रहा है। झगड़ों-टटों का बाज़ार पहले से भी ज़्यादा गर्म है। औरत, जिसके बच्चा होनेवाला है, खूब ज़ोर-ज़ोर से चीख रही है। उधर ट्रांजिस्टर अपनी पूरी ताक़त से गला फाड़कर चिल्ला रहा है।)

मु० ३ : राज कपूर से बड़ा ऐक्टर नहीं ...

मु० ४ : दिलीप कुमार ...

मु० ३ : दिलीप कुमार बेचारा ऐक्टिंग क्या जाने ... अपनी रोनी सूरत लिये बैठा रहता है... कुछ लोगों को उसकी यही अदा भा गयी है तो वह भी समझता है कि यही सबसे बड़ी ऐक्टिंग है।

मु० ४ : जैसा पार्ट होता है ...

मु० ३ : उसको सदा यही रोने का पार्ट क्यों मिलता है? कभी तो हँसते देखा होता।

मु० ४ : हँसने को कुछ है भी ?

मु० ३ : तो रोने से ही क्या मिल जाता है ?

मु० ४ : जी थोड़ा हल्का हो जाता है और क्या ...

मु० ३ : और भारी हो जाता है कि हल्का हो जाता है? अजब उल्टी खोपड़ी है तुम्हारी! दिलीप कुमार की तसवीरें देख-देखकर और होगा भी क्या!

मु० ४ : (बिदकर) तुम्हें तो बस अपना राजकपूर पसन्द है ... जोकर ..

मु० १ : कम से कम हँसाता तो है ..

मु० ४ : हँसाता क्या है, भँड़ैती करता है ...

मु० १ : (धमकी भरे स्वर में) फिर तो कहो !

मु० ४ : (शब्दों को चबाचबाकर, खूब धीरे-धीरे) मैंने कहा कि तुम्हारा राज कपूर ऐक्टर नहीं भाँड़ है।

मु० १ : मेरे हीरो को भाँड़ कहता है ! ज़बान खींच लूँगा ! खैर मनाओ बेटा, कि आज मैं जूता नहीं चप्पल पहने हूँ और मुहावरे की गलती नहीं करना चाहता वर्ना अच्छी खबर लेता तुम्हारी !

मु० ४ : साला ! मुहावरे के पीछे मुँह छिपाता फिरता है। बुज़दिल कहीं का। टाँग चीरकर रख दूँगा। हम राज कपूर नहीं दिलीप कुमार के साँचे में ढले हैं — आन पर मर मिटना जानते हैं। (बहुत धीरे से) 'आन' देखी थी ना ? कोई कुछ भी कहे, दिलीप कुमार असल मर्द ऐक्टर है ...

मु० १ : टेसुए बहाना कोई मर्दानगी नहीं है ...

मु० ७ : ये बात आपने बाबू साहब, ठीक कही ... मर्द ऐक्टर तो एक ही है — दारा सिंह।

मु० ४ : छी छी, किसका नाम ले लिया ... दारा सिंह भी कोई ऐक्टर है।

मु० ७ : क्यों ?

मु० ४ : वह तो पहलवान है ... अखाड़े में पहलवानी करवा लो चाहे सिनेमा के पर्दे पर ...

... हाथ धर देगा तुम्हें तो वहीं टें बोल जाओगे।

मु० ४ : मैं और क्या कह रहा हूँ — पहलवान ही ठहरा। चौकीदार रखना हो तो मैं जरूर उसी को रक्खूं।

मु० ७ : तुम्हारा क्या मुँह है कि उसको चौकीदार रखोगे। उल्टे वह तुम्हारे जैसे दस हज्जार लोगों को रख ले अपने यहाँ झाड़ू लगाने को।

मु० ४ : बाप रे बाप, इतना बड़ा घर है उसका ?!

मु० ७ : महल है महल ... दारा सिंह कोई ऐसा-वैसा आदमी नहीं है .. पचीसों लाख रुपये साल की कमाई है ...

मु० ४ : पहलवानी से इतनी कमाई करते इसी को देखा ... नहीं बेचारे दूसरे पहलवान हैं, दिन-रात डंड पेलते हैं, कोई उनको टके को नहीं पूछता ! ... लेकिन तुम ठीक कहते हो यार, तुम्हारा ये दारा सिंह आदमी सूझबूझ का है ... पहलवानों के बीच ऐक्टर, ऐक्टरों के बीच पहलवान ... अखाड़े की धूल-मिट्टी से भी जान बची, हाथ-पैर, नाक-कान टूटने का भी डर नहीं, आगे-पीछे परियाँ घूम रही हैं, और पचीसों लाख की कमाई ऊपर से ...

मु० ७ : चकाचक मामला है ... अपने ही गाँव का तो है दारा सिंह ...

मु० ४ : फिर क्या बात है प्यारे ... एक दिन तुम भी सितारों की दुनिया में जगमगाते होगे — मगर देखो भाई, वहाँ पहुँचकर हम लोगों को भूल मत जाना।

मु० ७ : सफर के साथियों को कभी कोई भूलता भी है ! और फिर आज जैसा सफ़र जब किसी ने किसी की शकल तक नहीं देखी ! मुझे पहुँचने तो दो वहाँ, फिर देखो मैं कितनी जल्दी तुम सबको वहीं पर बुलाता हूँ।

(इस बीच संजय लौट आया है।)

संजय : (बुलंद आवाज़ में, शोर को दबाने के लिए) भाइयो और बहनो, अब आप थोड़ी देर अपने मुँह को आराम दीजिए तो मैं आपसे एक काम की बात कहूँ ...

मु० ३ : हमें नहीं सुननी काम की बात — आप भी अपने मुँह को आराम दीजिए। मगर आप हैं कौन ?

संजय : आप मुझको नहीं जानते ... सच तो ये है कि यहाँ कोई किसी को नहीं जानता, बस आवाज़ें सुनायी पड़ती हैं ...

मु० ५ : यों ही क्या कुछ कम आवाज़ें हैं जो आप भी अपनी आवाज़ लेकर पहुँच गये ?

संजय : सुनिए तो मैं क्या कह रहा हूँ ... बंद करो जी अपना ट्रांजिस्टर ··· तुम सुनते क्यों नहीं, इतनी देर से लोग मना कर रहे हैं।

मु० ३ : उस औरत को क्यों नहीं मना करते जो चिल्ला-चिल्ला कर सबकी जान सांसत में किये है ?

संजय : तुम्हें पता नहीं उसको बच्चा होनेवाला है ...

मु० ३ : मुझे तो पता है, खुद उसको पता नहीं था ? ... यह रेलगाड़ी का डिब्बा है जनाब, जनाना अस्पताल नहीं है।

संजय : तुम समझ नहीं रहे हो मामला कितना नाजुक है ... अभी बच्चा हो गया कहीं तो भागते राह नहीं मिलेगी ...

मु० ३ : क्या मतलब ?

संजय : पुलिस आकर पकड़ लेगी सबको, दफ़ा ७२१ में, फिर

: जी नहीं, क़ानून है ... (आवाज़ धीमी करके) क्या सबूत कि यह बच्चा आपका नहीं है ? दरोग़ा साहब के सामने जच्चा की उँगली जिधर भी उठ गयी, उसका समझो बारह बज गया ... मरते दम तक ढोनी पड़ेगी अपने पाप की गठरी ... कोई खेल है कि औरत को इस हाल मे पहुँचाकर चलते बने !

: मगर कैसे कोई बेसिरपैर ...

: लगता है बाबू साहब कभी कानून की चपेट मे पड़े नही ? पहले तो आप पुलिस की हाजत मे बंद हो जाइएगा, सिर-पैर पीछे देखा जायेगा, आप हैं किस होश मे ।

: ये तो बड़ी टेढ़ी खीर है ...

: अभी तो मैंने कहा आपको होशियार कर दूँ । इसके पहले कि पुलिस आकर आपका कान उमेठे, आप अपने इस शैतानी बाजे का कान उमेठ दीजिए ... यह औरत एक जीता-जागता बम का गोला है जिसके साथ हम सफ़र कर रहे हैं । ज़रा सी ठेस लगी और फट पड़ेगा । ख़ैरियत से इसको निबाह देने मे ही अपनी भी ख़ैरियत है ।

(... बंद हो जाता है ।)

अब आपसे मेरी हाथ जोड़कर विनती
चिल्लायें तो हम सब मिलकर बिजली
इन चीख़ों से तो हमारे
ये है कि मैं धरती-
...बिजलीवाला नहीं

कथ।

भयानक अँधेरे के बीच इस दुनिया में आये ... इसी मारे मैं सब जगह भटकता फिरा, लेकिन बिजलीवाला कहीं नहीं मिला। वहीं पहले बहुत से लोग मिले। लेकिन उनमें से कोई गार्ड या कोई टिकट कलेक्टर, कोई इंजन का मिस्त्री, कोई स्टेशन मास्टर, कोई गैंग-मैन कोई प्वाइंट्समैन, बिजलीवाला कोई न था ... मगर सबने कहा कि बिजलीवाला होगा, यहीं कहीं होगा ... फिर मैंने रेल के डिब्बों में घूम-घूम कर देखा, प्लेटफार्म की धूल को आटे की तरह चालकर देखा, छत की कार्निस पर देखा, कहीं कबूतर की तरह वहीं न बैठा हो, हर खंभे के पीछे झांककर देखा, कहीं किसी से आँखमिचौनी न खेल रहा हो, कूड़ेदानी को उलट-पलटकर देखा, कहीं पद्मासन लगाये योगसाधना न कर रहा हो, यहाँ तक कि दो-एक कुंओं में डोल भी डल-वाये, मगर बिजली कहीं नहीं मिला ... इसलिए भाइयो, अब तो अपने को ही खटर पटर करनी पड़ेगी। कौन नहीं जानता कि बिजली का फ़्यूज़ ठीक करना एक बहुत ही मुश्किल काम है। सबसे पहले तो फ़्यूज़ वायर ही कभी वक़्त पर नहीं मिलता — कितना भी सहेजकर रखा हो, घर में एक-एक आदमी को बता दो कि देखो यहाँ पर फ़्यूज़ वायर रखा है; लेकिन इतना तय है कि अगली बार फिर जब जरूरत पड़ेगी तब वह नहीं मिलेगा। सबको रुपये में निन्नानबे पैसा याद आयेगा कि वो तार कहाँ पर रखा था लेकिन [illegible] बाक़ी एक पैसे के खेल में

ठीक करना दुनिया के सबसे मुश्किल कामों में से एक है ! लेकिन इसी सिलसिले का मेरा एक तजुर्बा यह भी है कि जहाँ किसी बिजलीवाले के ठीक किये बिजली ठीक नहीं होती वहाँ हथौड़ी की दस-पाँच चोटों से काम हो जाता है — है भाई, किसी के पास हथौड़ी है ?

मु० ९ : क्यों भाई, किसी के पास हथौड़ी तो नहीं ?

मु० १० : हथौड़ी यहाँ किसके पास धरी है ।

संजय : वाह, बातें तो ऐसी गरम गरम हो रही थी कि लगता था आज दो-चार का सर टूटे बग़ैर नहीं रहेगा, और किसी के पास एक हथौड़ी भी नहीं ! ख़ैर छोड़ो, कोई बात नहीं ... ईंट से भी काम चल जायेगा ... जरा भैया, एक जने लपककर बाहर से एक ईंट तो उठा लो — अच्छी पकी हुई, मजबूत ईंट उठाना ...

मु० ७ : ईंट यहाँ कहाँ मिलेगी ... सब तरफ़ कीचड़ हो रहा है ... अभी मैं एक काम से बाहर गया था ...

संजय : यह तो बुरी खबर सुनायी आपने ... इसका मतलब है कि सर टकराना पड़ेगा ... अच्छा तो भाइयो, आप लोग अब जरा एक किनारे हो जाइए ... (दोनों हाथों से, पानी काटने की तरह, लोगों को किनारे हटाकर अपना रास्ता साफ़ करता है, माथे पर झुक आये बालों को हाथ से पीछे फेरता है, दो-चार बार जोरों से हाथ घुमाता है, पैर फटकारता है, माथे को ठोक-कर देखता है, दो-एक डंड-बैठक भी कर लेता है । इस सबके दौरान, मुसाफ़िर ७ काकोरी के शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' का वो मशहूर शेर पढ़ने लगता

है —

दरो दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं
ख़ुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं

शेर ख़त्म होने पर ट्रांजिस्टर कोई रोमांटिक फ़िल्मी गाना बजाने लगता है, जिसके ख़त्म होते ही मुसाफ़िर ३ हनुमान चालीसा का पाठ करने लगता है।)

संजय : (मंच पर आगे को बढ़कर, कुछ मंच पर के अपने साथियों और कुछ नाटक के दर्शकों से, हाथ जोड़कर भाव-विह्वल भर्रायी हुई सी आवाज़ में) भाइयो, दोस्तो, साथियो, अब मैं चलता हूँ। मेरा कहा-सुना माफ़ करना। अपना इतना ही साथ था ... फिर जाने कब मिलना हो, न हो ... (बालों को फिर पीछे की तरफ़ फेरते हुए, एक बार ज़ोर से कोई नारा लगाता है और दौड़कर स्विचबोर्ड को अपने माथे से टक्कर मारता है। एक बार, दो बार, तीन बार। फिर बैठकर सुस्ताने लगता है। डिब्बे में भुनभुनाहट और भी बढ़ जाती है। लोग आपस में पता नहीं क्या-क्या बातें कर रहे हैं।)

मु० ५ : (आवाज़ चढ़ाकर, जोशीले भाषण की शैली में) धिक्कार है हम लोगों को! एक आदमी हमारे लिए सर फोड़ रहा है और हम बैठे उसका मुँह ताक रहे हैं। शर्म से डूब मरने की बात है ये। रोशनी क्या सिर्फ़ इसी आदमी को चाहिए — हम भी क्या अँधेरे में नहीं छटपटा रहे हैं? तब फिर यही आदमी क्यों अपना सर टकरायेगा? हम सब टकरायेंगे, भाइयो, हम सब टकरायेंगे ...

मोहन : ना बाबा, मैं नहीं टकराऊँगा, कहीं सिर फूटफाट गया तो ये नौ-नौ बच्चे मेरे, इनका क्या होगा ? होने दो अँधेरा, अभी सब एक दूसरे से लगे-लिपटे बैठे तो हैं।

रमेसर : मुझे अपने मुकदमे से ही छुट्टी नहीं कि दूसरा कुछ सोच भी सकूँ, मरना तो बड़ी दूर की बात है ...

मु० ४ : और मुझे तो आप लोग इस मरने-वरने से अलग ही रखिए ... अँधेरे से मेरी कोई लड़ाई नहीं, हाँ प्रेम की खातिर मरना होता तो और बात थी ...

ओमी : कोई बात नहीं। आप सब लोग आराम से बैठिए। सर टकराने के लिए मैं अकेला ही काफी हूँ।

संजय : मगर भाई, तुम हो कौन ?

मु० ५ : ये ? ये ओमी है ... इसका सर ईंट का भी बाप है ... एक बार तो ये एक साँड से भिड़ गया ... बड़ा मरकहा साँड था ... मुहल्लेवालों का रास्ता चलना मुश्किल हो गया था ... मगर फिर साहब जो कुश्ती हुई है दोनो की ... पूरे एक घंटे चली ... कई बार उसने ओमी को नीचे गिरा दिया और एक बार तो समझो उसका काम ही तमाम था ... क़रीब था कि वह ओमी के पेट में सींग घुसेड़ देता कि ओमी फिर बच निकला और उसने जो पलटकर साँड के पेट में अपना सर मारा है तो वह तरबूज की तरह फूट गया और देखते-देखते साँड ने दम तोड़ दिया ... बड़ा मज़बूत सर है इसका ... बरसों अभ्यास किया है ... नौकरी के लिए सर मारा है ... रात रात भर बहसों में सिर फुड़ौवल की है जिनमें कोई आज तक ओमी

से जीत नहीं सका ... और फुटबाल खेला है, ओ कहने-सुनने के लिए ही फुटबाल था क्योंकि ओमी तो गेंद नीचे गिरने ही नहीं देता था, लोग मुँह ताकते खड़े रहते थे और गोल हो जाता था ...

संजय : अच्छा ! तब तो यार, तुम बहुत ही काम के आदमी हो। मुझे अब किसी तीसरे की जरूरत नहीं, जब तक हम दोनों के सर मजबूत हैं और उन्हें हथौड़े की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। अच्छा तो ओमी भाई, आओ, अब एक हल्ला तुम्हारा रहे, और हाँ, देखो, थकने लगो तो बता देना, मैं चालू हो जाऊँगा ... अमाँ वो ट्रांजिस्टरवाले, अब बजाते क्यों नहीं अपना बाजा ? लेकिन देखो वो सजनी-साजन नहीं, कोई जोशीली धुन बजाना ... (दो-तीन जगह कोशिश करने के बाद एक जगह जोशीली धुन मिल जाती है — अर्थात् ट्रांजिस्टर बंद कर दिया जाता है और नेपथ्य से टेप पर जोर लगाओ, हेइया ... सर टक-राओ, हेइया ... मार गिराओ, हेइया ... दूर भगाओ, हेइया - वाला गाना संगीत के साथ बजने लगता है। बीच-बीच में धम्-धम् की आवाज, ओखली में मूसल चलने की सी, जो सर टकराने की आवाज है।) वाह पट्ठे, असल मर्द है ... और एक बार ... बिजली अब बस आया ही चाहती है .. मारो तो टक्कर जरा दो कदम पीछे हटकर ... जरा और जोर से ... कब तक नहीं आवेगी साली ... मार-मारकर हलुआ कर दूँगा ... वाह दोस्त, आज तुमने तो कमाल कर दिया। सर कैसा रहा है ? कोई बात नहीं ... अरे

ओ मलहमवाले, कहाँ हो, लाओ न अपना बाबा भैरव-नाथ, अभी सब ठीक हुआ जाता है ... (एक बार एक क्षण के लिए बिजली आती है) क्या कहा था मैंने ! साली हमारा कसबल देखने आयी थी ! मार के आगे भूत भागता है ... अब बस ज्यादा नहीं दो ही चार चोटों का खेल है ... हम सब चरकटे हैं । आज का हीरो तो ओमी है । आओ दोस्त, कमर कसकर, और दो-चार चोटें मारो, देखता हूँ बिजली कैसे नहीं आती ...

मु० ६ : आदमी का ही सर है, कहीं फूट गया तो ?

संजय : उसकी फिक्र मत करो । मेरे पास बहुत अच्छा विला-यती गोंद है । उससे सब कुछ जुड़ जाता है । टूटी कढ़ाही से लेकर टूटे हुए मियाँ-बीवी के रिश्ते तक ! हाँ दोस्त, आओ, इस बार जरा रन लेकर ... हाँ, ये थी अच्छी तगड़ी चोट ! इसी तरह फिर टकराओ, फिर-फिर टकराओ, बिजली की ऐसी-तैसी, कब तक नहीं आयेगी ! हाँ-हाँ, ये बात ... ऐसी ही घनगरज चोटों का काम है ... मारे जाओ सर ... वाह मेरे शेर, कहाँ छिपे बैठे थे अब तक तुम ! आओ, अब दस-पाँच चोटें हम दोनों मिलकर लगायें ... (ओमी और संजय एक-दूसरे की कमर में हाथ डालकर, सर से सर जोड़ लेते हैं और एक ही ऐक्शन में साथ-साथ के उस स्विचबोर्ड से जाकर टकराते हैं ।) और, सांड़ का पेट अब फटा ही चाहता है

आखीर तक नहीं आती । डिब्बे के अन्दर

आज अभी

पूरी अराजकता है। लोग सब इधर-उधर पड़े हैं, बैठे हैं, लेटे हैं, बिखर-बिखर कर सब मृतक दिखाई पड़ते हैं, कहीं किसी मरने को जगह नहीं है, जैसे [illegible] के लिए अवसर हुए हैं। एक आदमी वहीं बैठ देख रहा है। एक आदमी झाड़ू हाथ में लेकर उसमें देख रहा है। एक आदमी दूसरे का गला दबोचे है। और इसी ठहरे हुए दृश्य पर पर्दा गिरता है।)

□